प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद

संत श्री आसारामजी बापू के

सत्संग-प्रवचन

ऋषि प्रसाद

पूज्य बापू के आशीर्वचन

इस छोटी सी पुस्तिका में वे रत्न भरे हुए हैं जो जीवन को चिन्मय बना दें। हिटलर और सिकंदर की उपलब्धियों और यश उनके आगे अत्यंत छोटे दिखने लगे।

तुम अपने सारे विश्व में व्याप्त अनुभव करो। इन विचार रत्नों को बार-बार विचारो। एकांत में शांत वातावरण में इन वचनों को दोहराओ। और....अपना खोया हुआ खजाना अवश्य अवश्य प्राप्त कर सकोगे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

करो हिम्मत......! मारो छलांग.....! कब तक गिड़गिड़ाते रहोगे ? हे भोले महेश ! तुम अपनी महिमा में जागो। कोई कठिन बात नहीं है। अपने साम्राज्य को संभालो। फिर तुम्हें संसार और संसार की उपलब्धियाँ, स्वर्ग और स्वर्ग के सुख तुम्हारे कृपाकांक्षी महसूस होंगे। तुम इतने महान हो। तुम्हारा यश वेद भी नहीं गा सकते। कब तक इस देह की कैद में पड़े रहोगे ?

ॐ.....! ॐ.....!! ॐ.......!!!

उठो..... जागो......! बार-बार इन वचनों में अपने चित्त को सराबोर कर दो।

।। ॐ शांतिः ।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अमृत-बिन्दु

वह मानव परम सदभागी है

सदगुरू सेवाः परम रसायन

पुष्प चयन

- आत्मनिष्ठा
- सत्संग
- गुरु....
- पुरुषार्थ
- अहं....
- श्रद्धा-भक्ति-समर्पण
- निर्भयता
- विवेक-आत्मविचार
- निष्काम कर्म उपासना-आचारशुद्धि
- समता....
- मृत्यु
- मन.....
- सुख-दुःख-आनन्द शान्ति.....
- जीवन

धर्म....
ईश्वर....
अज्ञान....
आत्मकृपा...
विद्या....
ब्रह्मचर्य....
ज्ञानी....
आत्मयोग

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वह मानव परम सदभागी है...

इस संसार में यदि कुछ दुर्लभ हो तो वह है जीव को मानवदेह की प्राप्ति होना। मानवदेह मिल जाये तो मोक्ष की इच्छा होना दुर्लभ है। मोक्ष की इच्छा भी हो जाय तो मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने वाले सदगुरू की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। परमात्मा की कृपा हो तभी ये तीनों एक साथ प्राप्त हो सकते हैं। जिसको श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ सदगुरू संप्राप्त हो गये हैं वह मानव परम सदभागी है।

परमात्मा के नित्यावतारूप ज्ञानी महात्मा के दर्शन तो कई लोगों को हो जाते है लेकिन उनकी वास्तविक पहचान सब को नहीं होती, इससे वे लाभ से वंचित रह जाते हैं। महात्मा के साक्षात्कार के लिए हृदय में अतुलनीय श्रद्धा और प्रेम के पुष्पों की सुगन्ध चाहिए।

जिस मनुष्य ने जीवन में सदगुरु की प्राप्ति नहीं की वह मनुष्य अभागा है, पापी है। ऐसा मानव या तो अपने से अधिक बुद्धिमान किसी को मानता नहीं, अभिमानी है, अथवा उसको कोई अपना हितैषी नहीं दिखता। उसको किसी में विश्वास नहीं। उसके हृदय में संदेह का शूल सतत् पीड़ा देता रहता है। ऐसा मानव दुःखी ही रहता है।

महापुरुष का आश्रय प्राप्त करने वाला मनुष्य सचमुच परम सदभागी है। सदगुरु की गोद में पूर्ण श्रद्धा से अपना अहं रूपी मस्तक रखकर निश्चिंत होकर विश्राम पाने वाले सत्शिष्य का लौकिक एवं आध्यात्मिक मार्ग तेजोमय हो जाता है। सदगुरु में परमात्मा का अनन्त सामर्थ्य होता है। उनके परम पावन देह को छूकर आने वाली वायु भी जीव के अनन्त जन्मों के पापों का निवारण करके क्षण मात्र में उसको आह्लादित कर सकती है तो उनके श्री चरणों में श्रद्धा-भक्ति से समर्पित होने वाले सत्शिष्य के कल्याण में क्या कमी रहेगी ?

गुरुत्व में विराजमान ज्ञानी महापुरुषों की महिमा गा रहे हैं शास्त्र, पुराण, वेद। उनके सामर्थ्य की क्या बात करें ? उपनिषद तो कहती हैः

तद् दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते।

उसके दृष्टिपथ में जो कोई आ जाता है उसकी मुक्ति कालांतर में भी हो जाती है। शेर की दाढ़ में आया हुआ शिकार संभव है छटक जाय लेकिन फकीर की दाढ़ में आया हुआ शिकार सदगुरु के दिल में स्थान पाया हुआ सत्शिष्य छटक नहीं सकता, श्रेयमार्ग छोड़कर संसार में गिर नहीं सकता, फँस नहीं सकता। उसका पारमार्थिक कल्याण अवश्य हो जाता है।

सदगुरु साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निमिच मात्र में समग्र सृष्टि के बन्धन काटकर मुक्त कर सकते हं।

यद् यद् स्पृश्यति पणिभ्यां यद् यद् पश्यति चक्षुषा।
स्थावरणापि मुच्यन्ते किं पुनः प्राकृताः जनाः।।

(उपनिषद)

ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ब्रह्मभाव से अपने हाथ से जिसको स्पर्श करते हैं, अपने चक्षुओं से जिसको देखते हैं वह जड़ पदार्थ भी कालांतर में जीवत्व पाकर आखिर ब्रह्मत्व को उपलब्ध होकर मुक्ति पाता है, तो फिर उनकी दृष्टि में आये हुए मानव के मोक्ष के बारे में संदेह ही कहाँ है ?

मोक्षमार्ग के साधनों में अनन्य भक्ति एक उत्तम साधन है। भक्ति का अर्थ है स्वरूप का अनुसन्धान।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधियते।।

आध्यात्मिक मार्ग में गुरुभक्ति की महिमा अपार है। शिष्य स्वयं में शिवत्व नहीं देख सकता। अतः प्रारंभ में उसे अपने सदगुरु में शिवत्व देखना चाहिए, सदगुरु को परमात्मास्वरूप से भजना चाहिए। इससे गुरु के द्वारा परमात्मा शिष्य में अमृत की वर्षा कर देते हैं, उसको अमृतस्वरूप बना देते हैं।

गुरुदेव में मात्र परमात्मा की भावना ही नहीं, गुरुदेव परमात्म-स्वरूप हैं ही। यह एक ठोस सत्य है। यह वास्तविकता अनुभव करने की है। श्वेतश्वतर उपनिषद कहती हैः

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

सदगुरू के चित्र, फोटो या मूर्ति के समक्ष उपासना करने से भी श्रेय और प्रेय के मार्ग की परोक्षता नष्ट हो जाती है तो सदगुरु के साक्षात श्रीचरणों का सेवन करने वाला, अनन्य भक्त, प्रेमी, सत्शिष्य का कल्याण होने में विलंब कैसा ?

जिसके जीवन में दिव्य विचार नहीं है, दिव्य चिन्तन नहीं है वह चिन्ता की खाई गिरता है। चिन्ता से बुद्धि संकीर्ण होती है। चिन्ता से बुद्धि का विनाश होता है। चिन्ता से बुद्धि कुण्ठित होती है। चिन्ता से विकार पैदा होते हैं।

विचारवान पुरुष अपनी विचारशक्ति से विवेक वैराग्य उत्पन्न करके वास्तव में जिसकी आवश्यकता है उसे पा लेगा। मूर्ख मनुष्य जिसकी आवश्यकता है उसे समझ नहीं पायेगा और जिसकी आवश्यकता नहीं है उसको आवश्यकता मानकर अपना अमूल्य जीवन खो देगा।

मैं द्रष्टा हूँ, यह अनुभूति भी एक साधक अवस्था है। एक ऐसी सिद्धावस्था आती है जहाँ द्रष्टा होने का भी सोचना नहीं पड़ता। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरु-सेवाः परम रसायन

गुरुभक्ति और गुरुसेवा ये साधनारूपी नौका की पतवार है जो शिष्य को संसारसागर से पार होने में सहायरूप हैं।

आज्ञापालन के गुण के कारण आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में आने वाला सब से बड़ा शत्रु अहंभाव धीरे धीरे निर्मूल हो जाता है।

पूजा, पुष्पोहार, भक्ति तथा अन्य आँतिरक भावों की अभिव्यक्तियों से गुरुआज्ञापालन का भाव ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

जो मनुष्य गुरुभक्तियोग के मार्ग से विमुख है वह अज्ञान, अन्धकार और मृत्यु की परंपररा को प्राप्त होता है।

किसी आदमी के पास विश्व की अत्यन्त मूल्यवान सारी वस्तुएँ हों लेकिन उसका चित्त यदि गुरुदेव के चरणकमलों में नहीं लगता हो तो समझो कि उसके पास कुछ भी नहीं है।

गुरुदेव की सेवा दिव्य प्रकाश, ज्ञान और कृपा को ग्रहण करने के लिए मन को तैयार करती है।

गुरुसेवा हृदय को विशाल बनाती है, सब अवरोधों को हटाती है, मन को हमेशा प्रगतिशील और होशियार रखती है। गुरुसेवा हृदयशुद्धि के लिए एक प्रभावशाली साधना है।

गुरुसेवा से ईर्ष्या, घृणा और दूसरों से उच्चतर होने का भाव नष्ट होता है।

जो शिष्य सद्गुरुदेव की सेवा करता है वह वास्तव में अपनी ही सेवा करता है।

शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरुदेव के समक्ष धीरे, मधुर वाणी में और सत्य बोले तथा कठोर एव गलीज शब्दों का प्रयोग न करे।

जो गुरु की निंदा करता है वह रौरव नर्क में गिरता है।

शिष्य जब गुरुदेव के सान्निध्य में रहता है तब उसका मन इन्द्रिय-विषयक भोग विलासों से विमुख हो जाता है।

राजसी प्रकृति का मनुष्य पूरे दिल से, पूरे अन्तःकरण से गुरु की सेवा नहीं कर सकता।

सदगुरुदेव के स्वरूप का ध्यान करते समय दिव्य आत्मिक आनन्द, रोमांच, शान्ति आदि का अनुभव होगा।

संसारी लोगों का संग, आवश्यकता से अधिक भोजन, अभिमानी राजसी प्रवृत्ति, निद्रा, काम, क्रोध, लोभ ये सब गुरुदेव के चिन्तन में अवरोध हैं।

गुरुभक्ति जन्म, मृत्यु और जरा को नष्ट करती है।

शिष्य लौकिक दृष्टि से कितना भी महान हो फिर भी सदगुरुदेव की सहायता के बिना निर्वाणसुख का स्वाद नहीं चख सकता।

गुरुदेव के चरणकमलों की रज में स्नान किये बिना मात्र तपश्चर्या करने से या वेदों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

गुरुदेव को शिष्य की सेवा या सहायता की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। फिर भी सेवा के द्वारा विकास करने के लिए शिष्य को वे एक मौका देते हं।

भवसागर में डूबते हुए शिष्य के लिए गुरुदेव जीवन संरक्षक नौका है।

गुरुदेव के चिन्तन से सुख, आन्तरिक शक्ति, मन की शांति और आनन्द प्राप्त होते हैं।

मन्त्रचैतन्य अर्थात् मन्त्र की गूढ शक्ति गुरुदेव की दीक्षा के द्वारा ही जागृत होती है।

गुरुदेव की सेवा किये बिना किया हुआ तप, तीर्थाटन और शास्त्रों का अध्ययन यह समय का दुर्व्यय मात्र है।

गुरुदक्षिणा दिये बिना गुरुदेव से किया हुआ पवित्र शास्त्रों का अभ्यास यह समय का दुर्व्यय मात्र है।

गुरुदेव की इच्छाओं को परिपूर्ण किये बिना वेदान्त के ग्रन्थ, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र का अभ्यास करने में कल्याण नहीं होता, ज्ञान नहीं मिलता।

चाहे जितने दार्शनिक ग्रन्थ पढ़ लो, समस्त विश्व का प्रवास करके व्याख्यान दो, हजारों वर्षों तक हिमालय की गुफा में रहो, वर्षों तक प्राणायाम करो, जीवनपर्यन्त शीर्षासन करो, फिर भी गुरुदेव की कृपा के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता।

गुरुदेव के चरणकमलों का आश्रय लेने से जो आनन्द का अनुभव होता है उसकी तुलना में त्रिलोकी का सुख कुछ भी नहीं है।

गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला सीधे नर्क में जाता है।

यदि तुम सच्चे हृदय से आतुरतापूर्वक ईश्वर की प्रार्थना करोगे तो ईश्वर गुरु के स्वरूप में तुम्हारे पास आयेंगे।

सच्चे गुरु से अधिक प्रेमपूर्ण, अधिक हितैषी, अधिक कृपालु और अधिक प्रिय व्यक्ति इस विश्व में कोई नहीं हो सकता।

सत्संग का अर्थ है गुरु का सहवास। इस सत्संग के बिना मन ईश्वर की ओर नहीं मुड़ता।

गुरुदेव के साथ किया हुआ एक पल का सत्संग भी लाखों वर्ष किये हुए तप से कई गुना श्रेष्ठ है।

हे साधक ! मनमुखी साधना कभी नहीं करो। पूर्ण श्रद्धा एवं भक्तिभाव से युक्त गुरुमुखी साधना करो।

तुम्हारे बदले में गुरु साधना नहीं करेंगे। साधना तो तुमको स्वयं ही करनी पड़ेगी।

गुरुदेव तुमको उठाकर समाधि में रख देंगे ऐसे चमत्कार की अपेक्षा न करो। तुम खुद ही कठिन साधना करो। भूखे आदमी को स्वयं ही खाना पड़ता है।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पवित्र और जीवनपर्यन्त का है यह बात ठीक-ठीक समझ लो।

अपने गुरुदेव की क्षतियाँ न देखो। अपनी क्षतियाँ देखो और उन्हें दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।

गुरुपद एक भयंकर शाप है।

सदगुरुदेव के चरणामृत से संसारसागर सूख जाता है और मनुष्य आत्म-संपदा को प्राप्त कर सकता है।

सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए गुरुदेव की अपरिहार्य आवश्यकता है।

सन्त, महात्मा और सदगुरुदेव के सत्संग का एक अवसर भी मत चूको।

अहंभाव का नाश करना यह शिष्यत्व का प्रारम्भ है।

शिष्यत्व की कुंजी है ब्रह्मचर्य और गुरुसेवा।

शिष्यत्व का चोला है गुरुभक्ति।

सदगुरुदेव के प्रति सम्पूर्णतया आज्ञापालन का भाव ही शिष्यत्व की नींव है।

गुरुदेव से मिलने की उत्कट इच्छा और उनकी सेवा करने की तीव्र आकांक्षा यह मुमुक्षुत्व की निशानी है।

ब्रह्मज्ञान अति सूक्ष्म है। संशय पैदा होते हैं। उनकी निवृत्ति करने के लिए और मार्ग दिखाने के लिए ब्रह्मज्ञानी गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है।

गुरुदेव के समक्ष हररो अपने दोष कबूल करो। तभी तुम इन दुन्यावी दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकोगे।

दृष्टि, स्पर्श, विचार या शब्द के द्वारा गुरु अपने शिष्य का परिवर्तन कर सकते है।

गुरु तुम्हारे लिए विद्युत की डोली हैं। वे तुम्हें पूर्णता के शिखर पर पहुँचाते हैं।

जिससे आत्म-साक्षात्कार को गति मिले, जिससे जागृति प्राप्त हो उसे गुरुदीक्षा कहते हैं।

यदि तुम गुरु में ईश्वर को नहीं देख सकते तो और किसमें देख सकोगे ?

शिष्य जब गुरु के सान्निध्य में रहते हुए अपने गुरुबन्धुओं के अनुकूल होना नहीं जानता है तब घर्षण होता है। इससे गुरु नाराज होते हैं।

अधिक निद्रा करने वाला, जड़, स्थूल देहवाला, निष्क्रिय, आलसी और मूर्ख मन का शिष्य, गुरु सन्तुष्ट हों, इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकता।

जिस शिष्य में तीव्र लगन का गुण होता है वह अपने गुरुदेव की सेवा में सफल होता है। उसे आबादी और अमरत्व प्राप्त होते हैं।

अपने पावन गुरुदेव के प्रति अच्छा बर्ताव परम सुख के धाम का पासपोर्ट है।

गुरुदक्षिणा देने से असंख्य पापों का नाश होता है।

अपने गुरुदेव के प्रति निभायी हुई सेवा यह नैतिक टॉनिक है। इससे मन और हृदय दैवी गुणों से भरपूर होते हैं, पुष्ट होते हैं।

अपने गुरु की सेवा करते करते, गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते करते जो सब कठिनाईयों के सहन करता है वह अपने प्राकृत स्वभाव को जीत लेता है।

कृतघ्न शिष्य इस दुनियाँ में हतभागी है, दुःखी है। उसका भाग्य दयनीय, शोचनीय और अफसोसजनक है।

सच्चे शिष्य को चाहिए कि वह अपने पूज्य गुरुदेव के चरणकमलों की प्रतिष्ठा अपने हृदय के सिंहासन पर करे।

गुरुदेव को मिलते ही शिष्य का सर्वप्रथम पावन कर्तव्य है कि उनको खूब नम्र भाव से प्रणाम करे।

यदि तुमको नल से पानी पीना हो तुम्हें नीचे झुकना पड़ेगा। उसी प्रकार यदि तुम्हें गुरुदेव के पावन मुखारविन्द से बहते हुए अमरत्व के पुण्यअमृत का पान करना हो तो तुम्हें नम्रता का प्रतीक होना पड़ेगा।

सदगुरुदेव के चरणकमलों की पूजा के लिए नम्रता के पुष्प से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई पुष्प नहीं है।

गुरुदेव के आदेशों में शंका न करना और उनके पालन में आलस्य न करना यही गुरुदेव की आज्ञा का पालन करने का दिखावा करता है। सच्चा शिष्य भीतर के शुद्ध प्रेम से गुरु की आज्ञा का पालन करता है।

गुरुदेव के वचनों में विश्वास रखना यह अमरत्व के द्वार खोलने की गुरुचाबी है।

जो मनुष्य विषयवासना का दास है वह गुरु की सेवा और आत्म समर्पण नहीं कर सकता है। फलतः वह संसार के कीचड़ से अपने को नहीं बचा सकता है।

गुरुदेव को धोखा देना मानों अपनी ही कब्र खोदना।

गुरुकृपा अणुशक्ति से भी ज्यादा शक्तिमान है।

शिष्य के ऊपर जो आपत्तियाँ आती हैं वे गुप्त वेश में गुरु के आशीर्वाद हैं।

गुरुदेव के चरणकमलों में आत्म-समर्पण करना यह सच्चे शिष्य का जीवनमंत्र होना चाहिए। साक्षात् ईश्वर-स्वरूप सदगुरुदेव के चरण-कमलों में आत्म-समर्पण करोगे तो वे तुम्हें भयस्थानों से बचायेंगे, साधना में तुम्हें प्रेरणा देंगे, अन्तिम लक्ष्य तक तुम्हारे पथप्रदर्शक बने रहेंगे।

सदगुरुदेव के प्रति श्रद्धा एक ऐसी वस्तु है कि जो प्राप्त करने के बाद अन्य किसी चीज की प्राप्ति करना शेष नहीं रहता। इस श्रद्धा के द्वारा निमिष मात्र में तुम परम पदार्थ को प्राप्त कर लोगे।

साधक यदि श्रद्धा और भक्तिभाव से अपने गुरुदेव की सेवा नहीं करेगा तो जैसे कच्चे घड़े में से पानी टपक जाता है वैसे उसके व्रत-जप-तप सबके फल टपक जायेंगे।

शिष्य को चाहिए कि वह गुरुदेव को साक्षात ईश्वर माने। उनको मानव कभी नहीं माने।

जिससे गुरुचरणों के प्रति भक्तिभाव बड़े वह परम धर्म है।

नियम का अर्थ है गुरुमंत्र का जप, गुरुसेवा के दौरान तपश्चर्या गुरुवचन में श्रद्धा, गुरुदेव की सेवा, संतोष, पवित्रता, शास्त्रों का अध्ययन, गुरुभक्ति और गुरु की शरणागति।

तितिक्षा का अर्थ है गुरुदेव के आदेशों का पालन करते दुःख सहना।

त्याग का अर्थ है गुरुदेव के द्वारा निषिद्ध कर्मों का त्याग।

भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं - 'अति सौभाग्य से प्राप्त यह मानवदेह मजबूत नौका जैसा है। गुरु इस नौका का सुकान सँभालते हैं। इस नौका को चलानेवाला मैं (ब्रह्म) अनुकूल पवन हूँ। जो मनुष्य ऐसी नौका, ऐसे सुकानी और ऐसा अनुकूल पवन के होते हुए भी भवसागर पार करने का पुरुषार्थ नहीं करता वह सचमुच आत्मघाती है।'

गुरुदेव की अंगत सेवा यह सर्वोत्तम योग है।

क्रोध, लोभ, असत्य, क्रूरता, याचना, दंभ, झगड़ा, भ्रम, निराशा, शोक, दुःख, निद्रा, भय, आलस्य ये सब तमोगुण हैं। अनेकों जन्म लेने के बावजूद भई इनको जीता नहीं जाता। परंतु श्रद्धा एवं भक्ति से की हुई गुरुदेव की सेवा इन सब दुर्गुणों को नष्ट करती है।

साधक को चाहिए कि वह स्त्री का सहवास न करे। स्त्री सहवास के जो लालची हों उनका संभ भी न करे क्योंकि उससे मन क्षुब्ध हो जाता है। मन जब क्षुब्ध होता है तब शिष्य भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक गुरु की सेवा नहीं कर सकता है।

शिष्य यदि गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता तो उसकी साधना व्यर्थ है।

जिस प्रकार अग्नि के पास बैठने से ठंड, भय, अंधकार दूर होते हैं उसी प्रकार सदगुरु के सान्निध्य में रहने से अज्ञान, मृत्यु का भय और सब अनिष्ट होते हैं।

गुरुसेवा रूपी तीक्षण तलवार और ध्यान की सहायता से शिष्य मन, वचन, प्राण और देह के अहंकार को छेद देता है और सब रागद्वेष से मुक्त होकर इस संसार में स्वेच्छापूर्वक विहार करता है।

ज्ञान का प्रकाश देने वाली पवित्र गुरुगीता का जो अभ्यास करता है वह सचमुच विशुद्ध होता है और उसको मोक्ष मिलता है।

जैसे सूर्योदय होने से कुहरा नष्ट होता है वैसे ही परब्रह्म परमात्मा स्वरूप सदगुरुदेव के अज्ञाननाशक सान्निध्य में सब संशय निवृत्त हो जाते हैं।

साक्षात् ईश्वर जैसे सर्वोच्च पद को प्राप्त सदगुरु की जय जयकार हो। गुरुदेव के यश को गानेवाले धर्मशास्त्रों की जय जयकार हो। ऐसे सदगुरु का परम आश्रय जिसने लिया उस शिष्य की जय जयकार हो।

गुरुकृपा का लघुतम बिन्दु भी इस संसार के कष्ट से मनुष्य को मुक्त करने के लिए काफी है।

जो शिष्य अहंकार से भरा हुआ है और गुरु के वचन नहीं सुनता, आखिर में उसका नाश ही होता है।

आत्म-साक्षात्कारी सदगुरुदेव और ईश्वर में तनिक भी भेद नहीं है। दोनों एक, अभिन्न और अद्वैत हैं।

गुरुदेव का सान्निध्य साधक के लिए एक सलामत नौका है जो अंधकार के उस पार निर्भयता के किनारे पहुँचाती है। जो साधक अपने साधनापथ में ईमानदारी से और सच्चे हृदय से प्रयत्न करता है और ईश्वर साक्षात्कार के लिए तड़पता है उस योग्य शिष्य पर गुरुदेव की कृपा उतरती है।

आजकल शिष्य ऐश-आराम का जीवन जीते हुए और गुरु की आज्ञा का पालन किये बिना उनकी कृपा की आकांक्षा रखते हैं।

आत्म-साक्षात्कारी सदगुरुदेव की सेवा करने से तुम्हारे मोक्ष की समस्या अवश्य हल हो जायेगी।

राग द्वेष से मुक्त ऐसे सदगुरु का संग करने से मनुष्य आसक्ति रहित होता है। उसे वैराग्य प्राप्त होता है।

अपने मन पर संयम रखकर जो योगाभ्यास नहीं कर सकते हैं उनके लिए भक्तिपूर्वक गुरुदेव की सेवा करना ही एक मात्र उपाय है।

गुरुदेव शिष्य की कठिनाईयों और अवरोधों को जानते हैं। क्योंकि वे त्रिकालज्ञानी हैं। मनोमन उनकी प्रार्थना करो। वे तुम्हारे अवरोध दूर कर देंगे।

गुरुदेव की कृपा तो हरदम बरसती ही रहती है। शिष्य को चाहिए की वह केवल उनके वचनों में श्रद्धा रखे और उनके आदेशों का पालन करे।

सच्चे शिष्य के लिए गुरुवचन ही कायदा है।

गुरु का दास होना यह ईश्वर के समीप होने के बराबर है।

दंभी गुरुओं से सावधान रहना। ऐसे गुरु शास्त्रों को रट लेते हैं और शिष्यों को उनमें से दृष्टान्त भी देते हैं पर अपने दिये हुए उपदेशों का स्वयं आचरण नहीं कर सकते।

आलसी शिष्य को गुरुकृपा नहीं मिलती। राजसी स्वभाव के शिष्य को लोक कल्याण करने वाले गुरुदेव के कार्य समझ में नहीं आते।

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले शिष्य को गुरुदेव की सलाह और आज्ञा लेनी चाहिए।

मुक्तात्मा गुरुदेव की सेवा, उनके उपदिष्ट शास्त्रों का अभ्यास, उनकी परम पावन मूर्ति का ध्यान यह गुरुभक्तियोग साधने के सुवर्णमार्ग हैं।

जो शिष्य नाम, कीर्ति, सत्ता, धन और विषयवासना के पीछे दौड़ता है उसके हृदय में सदगुरुदेव के पावन चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव नहीं जाग सकता।

ऐसे वैसे किसी भी व्यक्ति को गुरु के रुप में नहीं स्वीकारना चाहिए और एकबार गुरु के रूप में स्वीकार करने के बाद किसी भी संयोगवश उनका त्याग नहीं करना चाहिए।

जब योग्य और अधिकारी साधक आध्यात्मिक मार्ग की दीक्षा लेने के लिए गुरु की खोज में जाता है तब ईश्वर उसके समक्ष गुरु के रूप में स्वयं प्रगट होते हैं और दीक्षा देते हैं।

जो शिष्य गुरुदेव के साथ एकता या तादात्म्य साधना चाहते हैं उनको संसार की क्षणभंगुर चीजों के प्रति संपूर्ण वैराग्य रखना चाहिए।

जो उच्चतर ज्ञान चित्त में आविर्भूत होता है वह विचारों के रूप में नहीं अपितु शक्ति के रूप में होता है। ऐसा ज्ञान देने वाले गुरु चित्त के साथ एक रूप होते हैं।

शिष्य जब उच्चतर दीक्षा के योग्य बनता है तब गुरु स्वयं उसको योग के रहस्यों की दीक्षा देते हैं।

गुरु के प्रति श्रद्धा पर्वतों को हिला सकती है। गुरुकृपा चमत्कार पैदा कर सकती है। हे वीर ! निःसंशय होकर आगे बढ़ो।

परमात्मा के साथ एकरूप बने हुए महान आध्यात्मिक महापुरुष की जो सेवा करता है वह संसार के कीचड़ को पार कर सकता है।

तुम यदि सांसारिक मनोवृत्तिवाले लोगों की सेवा करोगे तो तुमको सांसारिक लोगों के गुण मिलेंगे। परंतु जो निरन्तर परम सुख में निमग्न रहते हैं, जो सर्वगुणों के धाम हैं, जो साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं ऐसे सदगुरुदेव के चरणकमलों की सेवा करोगे तो तुमको उनके गुण प्राप्त होंगे। अतः उन्हीं की सेवा करो, सेवा करो, बस सेवा करो। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पुष्प चयन

(परम पूज्य संत श्री आसाराम जी महाराज की समृद्ध सत्संग वाटिका से एकत्रित किये हुए सुविकसित सुगंधित और सुमधुर पुष्पों का संकलन)

आत्म निष्ठा

अपने आत्मदेव से अपरिचित होने के कारण ही तुम अपने को दीन हीन और दुःखी मानते हो। इसलिए अपनी आत्म महिमा में जग जाओ। यदि अपने आपको दीन हीन ही मानते रहे तो रोते रहोगे। ऐसा कौन है जो तुम्हें दुःखी कर सके ? तुम यदि न चाहो तो दुःख की क्या मजाल है कि तुम्हें स्पर्श भी कर सके ? अनन्त अनन्त ब्रह्मांडों को जो चला रहा है वह चेतना तुम्हारे भीतर चमक रही है। उसकी अनुभूति कर लो। वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है।

जैसे स्वप्न-जगत जाग्रत होने के बाद मिथ्या लगता है वैसे ही यह जाग्रत जगत अपने आत्मदेव को जानने से मिथ्या हो जाता है। जिसकी सत्ता लेकर यह जगत् बना है अथवा भासमान हो रहा है उस आत्मा को जान लेने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।

गहरी वास्तविकता में तुम आत्मा हो, ईश्वर हो, सर्वशक्तिमान हो। यह सत्य तुम्हारे जीवन में प्रगट होने की प्रतीक्षा कर रहा है।

तुम अपनी आत्मा पर सचमुच में निर्भर होकर सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे लिए असम्भव कुछ भी नहीं है। चाहे जितनी यौगिक क्रियाएँ सीख लो, चाहे जितने दिन ध्यान और समाधि कर लो लेकिन ध्यान और समाधि टूटने पर राग-द्वेष, शत्रु-मित्र, मेरे-तेरे का भाव आ जाय तो क्या लाभ ? आत्म-साक्षात्कार एक निराली चीज है।

मनोबल बढ़ाकर आत्मा में बैठ जाओ, आप ही ब्रह्म बन जाओ। संकल्प बल की यह आखिरी उपलब्धि है।

अपने को परिस्थितियं का गुलाम कभी न समझो। तुम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हो।

यदि तुम अचल तत्त्व में खड़े रहोगे तो तुम्हारे पैर अचल रहेंगे। इस संसार में आये हो तो ऐसा कुछ करके जाओ कि लोग तुम्हारे पदचिन्हों को प्रणाम करें और उनके सहारे आगे बढ़ें।

जो खुद को धोखा देता है उसको सारा विश्व धोखा देता है। कम से कम अपने आपसे तो वफादार रहो। जैसे भीतर हो वैसे बाहर हो कर रहो। जो खुद से वफादार नहीं रह सकता वह गुरु से भी वफादार नहीं रह सकता। जो गुरु से वफादार नहीं रह सकता वह सिद्धि नहीं पा सकता, अपने लोक-लोकान्तर को नहीं सुधार सकता।

जो अपने आप से वफादार है उसे प्रकृति कुछ हानि नहीं पहुँचा सकती।

हरेक इन्सान परमात्मा का स्वरूप है परन्तु वह खुद से वफादार नहीं रहा। उसने अविद्या की भाँग पी ली है और आत्मा पर आवरण आ गया है। इसी कारण वह अपने को दीन हीन मानने लगा है।

ईश्वर के रास्ते चलने में यदि गुरु भी रोकते हों तो गुरु की बात ठुकरा देना पर ईश्वर को न छोड़ना।

हजार यज्ञ करो, लाख मंत्र जपो लेकिन तुमने जब तक मूर्खता नहीं छोड़ी तब तक तुम्हारा भला न होगा।

मोह के निवृत्त होने पर बुद्धि सिवाय परमात्मा के और किसी में भी नहीं ठहरेगी। परमात्मा के सिवाय कहीं भी बुद्धि ठहरती है तो समझ लेना कि अज्ञान जारी है।

तुम जगत के स्वामी बनो अन्यथा जगत तुम्हारा स्वामी बन जायेगा।

आत्मा को जानने वाला शोक से तर जाता है। उसे कोई दुःख प्रभावित नहीं कर सकता। उसके चित्त को कोई भी दुःख चलायमान नहीं कर सकता।

प्रत्येक परिस्थिति में साक्षीभाव.... जगत को स्वप्नतुल्य समझकर अपने केन्द्र में थोड़ा सा जागकर देखिये ! फिर मन आपको दगा न देगा।

विश्व में आज तक ऐसा कोई सिद्ध नहीं हुआ जो साधनामार्ग में कभी गिरा न हो। आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ जो बालकपन में गिरा न हो।

शराबी को एक बार शराब की आदत पड़ गई तो वह हररोज शराब पियेगा, घर बरबाद करके भी पियेगा, कायदा तोड़कर भी पियेगा। इसी प्रकार जिसको एकबार ईश्वरीय मस्ती का स्वाद मिल गया वह ईश्वरीय मार्ग पर चलते वक्त कुटुंब या समाज की परवाह नहीं करता।

तुम सदैव से अकर्त्ता और अभोक्ता हो। तुम हो तो यह सब है। तुमसे अलग इसकी सत्ता नहीं है।

हम अपने वास्तविक स्वरूप, अपनी असीम महिमा को नहीं जानते। नहीं तो मजाल है कि जगत के सारे लोग और तैंतीस करोड़ देवता भी मिलकर हमें दुःखी करना चाहें और हम दुःखी हो जायें ! जब हम ही भीतर से सुख अथवा दुःख को स्वीकृति देते हैं तभी सुख अथवा दुःख हम को प्रभावित करते हैं। सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है।

जब तुम्हारा देह, मन, बुद्धि, विचार सहित यह सम्पूर्ण जगत तुम्हारी प्रज्ञा में स्वप्नमय सिद्ध हो जायेगा तब तुम्हारे तमाम दुःखों का अन्त हो जायेगा।

भौतिक जगत में भाप की शक्ति, विद्युत की शक्ति गुरुत्वाकर्षण की शक्ति बड़ी मानी जाती है मगर आत्मबल उन सब शक्तियों का संचालक बल है। आत्मबल के सान्निध्य में आकर पंगु प्रारब्ध को पैर आ जाते हैं, जीव की दीनता पलायन हो जाती है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं। आत्मबल सर्व ऋद्धि-सिद्धियों का पिता है।

सर्वत्र शिव है, अशिव है ही नहीं। मन का मान्यता, अपने को देह मानने की परिच्छिन्नता ही शिवस्वरूप होते हुए भी अपने को अशिव बना रही है।

प्रभु का दर्शन माधुर्य देने वाला है, आह्लाद देने वाला है, पापों का नाशक है, परन्तु आत्म-साक्षात्कार तो आखिरी मंजिल है, मनुष्य जीवन का अन्तिम प्राप्तव्य है। जिसे तत्त्वज्ञान हो गया उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहा।

ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म ही है यह सब तुमने पढ़ा है या विद्वानों से सुना है। इसका अनुभव तो नहीं किया। **जब तुम इस सत्य का यथार्थ अनुभव करोगे तब तुम जो बोलोगे वह वेदवाक्य हो जायगा।** जिसको तुम छुओगे वह प्रसाद बन जायेगा, जहाँ पैर रखोगे वह तीर्थ हो जायेगा। तुम तुम नहीं रहोगे। तुम्हारे द्वारा ईश्वर कार्य करेगा। प्रकृति तुम्हारी सेवा में हाजिर रहेगी।

उस निर्विकार आत्मतत्त्व को जाने बिना हम सच्चे सुख के, सच्चे आनन्द के भागी नहीं बन सकते। एक बार इसको हम अच्छी प्रकार समझ लें, फिर दृढ़ता से पैर आगे बढ़ाएँ। फिर कोई भी विघ्न आये, उसके सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ें। ऐसी दृढ़ता लायें। शाहों के शाह होने

का अपने में अनुभव कर लिया तो संसार का कोई भी दुःख और प्रलोभन तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेगा।

कठिन से कठिन काम है आत्म-साक्षात्कार करना और सरल से सरल काम भी है आत्म साक्षात्कार करना। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग

सत्संग जीवन का कल्पवृक्ष है।

परमात्मा मिलना उतना कठिन नहीं है जितना कि पावन सत्संग का मिलना कठिन है। यदि सत्संग के द्वारा परमात्मा की महिमा का पता न हो तो सम्भव है कि परमात्मा मिल जाय फिर भी उनकी पहचान न हो, उनके वास्तविक आनन्द से वंचिर रह जाओ। सच पूछो तो परमात्मा मिला हुआ ही है। उससे बिछुड़ना असम्भव है। फिर भी पावन सत्संग के अभाव में उस मिले हुए मालिक को कहीं दूर समझ रहे हो।

पावन सत्संग के द्वारा मन से जगत की सत्यता हटती है। जब तक जगत सच्चा लगता है तब तक सुख-दुःख होते हैं। जगत की सत्यता बाधित होते ही अर्थात् आत्मज्ञान होते ही परमात्मा का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। योगी, महर्षि, सन्त, महापुरुष, फकीर लोग इस परम रस का पान करते हैं। हम चाहें तो वे हमको भी उसका स्वाद चखा सकते हैं। परन्तु इसके लिए सत्संग का सेवन करना जरूरी है। जीवन में एक बार सत्संग का प्रवेश हो जाय तो बाद में और सब अपने आप मिलता है और भाग्य को चमका देता है।

दुःखपूर्ण आवागमन के चक्कर से छूटने के लिए ब्रह्मज्ञान के सत्संग के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं..... कोई रास्ता नहीं।

सत्संग से वंचित रहना अपने पतन को आमंत्रण देना है। इसलिए अपने नेत्र, कर्ण, त्वचा आदि सभी को सत्संगरूपी गंगा में स्नान कराते रहो जिससे काम विकार तुम हावी न हो सके।

सत्संग द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन के अनुसार पुरुषार्थ करने से भक्त पर भगवान या भगवान के साथ तदाकार बने हुए सदगुरु की कृपा होती है और भक्त उस पद को प्राप्त होता है जहाँ परम शांति मिलती है।

जो तत्ववेत्ताओं की वाणी से दूर हैं उन्हें इस संसार में भटकना ही पड़ेगा। चाहे वह कृष्ण के साथ हो जाये या क्राइस्ट के साथ चाहे अम्बा जी के साथ हो जाय, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

भगवान ने हमें बुद्धि दी है तो उसका उपयोग बन्धन काटने में करें न कि बन्धन बढ़ाने में, हृदय को शुद्ध करने में करें न कि अशुद्ध करने में। यह तभी हो सकता है जबकि हम सत्संग करें।

सदा यही प्रयत्न रखो कि जीवन में से सत्संग न छूटे, सदगुरु का सान्निध्य न छूटे। सदगुरु से बिछुडा हुआ साधक न जीवन के योग्य रहता है न मौत के। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गुरु

संसार में माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी के सम्बन्ध की तरह गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी एक सम्बन्ध ही है लेकिन अन्य सब सम्बन्ध बन्धन बढ़ाने वाले हैं जबकि गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सम बन्धनों से मुक्ति दिलाता है। यह सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है जो सब बन्धनों से छुड़ाकर अन्त में आप भी हट जाता है और जीव को अपने शिवस्वरूप का अनुभव करा देता है।

सच्चे गुरु नहीं मिले हों तो पुण्य कर्म करो। जिनके पुण्यकर्म में कमी है उनको गुरु सामने मिल जायें फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं पाते।

गुरु को नापने तोलने का विचार शिष्य के दिल में उठा और गुरु के बाह्य आचरण-व्यवहार को देखकर उनकी गहराई का अन्दाज लगाना शुरु किया तो समझो शिष्य के पतन का प्रारंभ हो चुका।

गुरु शिष्य के कल्याण के लिए सब कुछ करते हैं। उनके अन्दर निरन्तर अदम्य स्नेह की धारा बहती रहती है। वे द्वेष के वश होकर किसी को थोड़े ही डाँटते फटकारते हैं ? उनके सब राग-द्वेष व्यतीत हो चुके हैं। तभी तो वे गुरु बने हैं। उनकी हर चेष्टा सहज और सब के लिए हितकर ही होती है।

गुरुदेव के पीछे पीछे जाने की क्या आवश्यकता है ? उनके आदेश का अनुसरण करना है न कि उनके पीछे पीछे भटकना है। देह के पीछे पीछे भटकने से क्या होगा ? सत्शिष्य वही है जो गुरु के आदेश के मुताबिक चले। गुरुमुख बनो, मनमुख नहीं। गुरुदेव के वचनों पर चलो। सब ठीक हो जायेगा। बड़े दिखने वाले आपत्तियों के घनघोर बादल गुरुमुख शिष्य को डरा नहीं सकते। उसके देखते देखते ही वे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। गुरुमुख शिष्य कभी ठोकर नहीं खाता। जिसको अपने गुरुदेव की महिमा पर पूर्ण भरोसा होता है ऐसा शिष्य इस दुर्गम माया से अवश्य पार हो जाता है। गुरुकृपा से वह भी एक दिन अपने अमरत्व का अनुभव कर लेता है और स्वयं गुरुपद पर आरूढ़ हो जाता है।

जिस शिष्य में गुरु के प्रति अनन्य भाव नहीं जगता वह शिष्य आवारा पशु के समान ही रह जाता है।

सब पुरुषार्थ गुरुकृपा प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। गुरुकृपा प्राप्त हो जाये तो उसे हजम करने का सामर्थ्य आये इसलिए पुरुषार्थ किया जाता है। दूध की शक्ति बढ़ाने के लिए कसरत नहीं की जाती लेकिन शक्तिमान दूध को हजम करने की योग्यता आये इसलिए कसरत की जाती है। दूध स्वयं पूर्ण है। उसी प्रकार गुरुकृपा अपने आप में पूर्ण है, सामर्थ्यवान है। भुक्ति

और मुक्ति दोनों देने के लिए वह समर्थ है। शेरनी के दूध के समान यह गुरुकृपा ऐसे वैसे पात्र को हजम नहीं होती। उसे हजम करने की योग्यता लाने के लिए साधक को सब प्रकार के साधन-भजन, जप-तप, अभ्यास-वैराग्य आदि पुरुषार्थ करने पड़ते हैं।

जो साधक या शिष्य गुरुकृपा प्राप्त होने के बाद भी उसका महत्त्व ठीक से न समझते हुए गहरा ध्यान नहीं करते, अन्तर्मुख नहीं होते और बहिर्मुख प्रवृत्ति में लगे रहते हैं वे मूर्ख है और भविष्य में अपने को अभागा सिद्ध करते हैं।

संसारियों की सेवा करना कठिन है क्योंकि उनकी इच्छाओं और वासनाओं का कोई पार नहीं, जबकि सदगुरु तो अल्प सेवा से ही तुष्ट हो जायेंगे क्योंकि उनकी तो कोई इच्छा ही नहीं रहा।

सच पूछो तो गुरु आपका कुछ लेना नहीं चाहते। वे आपको प्रेम देकर तो कुछ देते ही हैं परन्तु डाँट-फटकार देकर भी आपको कोई उत्तम खजाना देना चाहते हैं।

उपदेश बेचा नहीं जा सकता। उपदेश का दान हो सकता है। इसी कारण हम सदगुरुओं के ऋणी रहते हैं। और.... सदगुरु का कर्जदार रहना विश्व का सर्वाधिक धनवान बनने से भी बड़े भाग्य की बात है।

अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए, अपनी बुद्धि को तेजस्वी बनाने के लिए, अपने हृदय को भावपूर्ण बनाने के लिए हम लोग सन्त, महापुरुष और सदगुरुओं की महिमा गा लेते हैं। यह ठीक है लेकिन उनकी असली महिमा के साथ तो अन्याय ही होता है। वेद भी उनकी महिमा गाते गाते थक चुके हैं।

गुरुकृपा या ईशकृपा हजम हुई कि नहीं, हम ज्ञान में जगे कि नहीं यह जानना हो तो अपने आपसे पूछोः "परमात्मा में रूचि हुई कि नहीं ? विलास, ऐशो-आराम से वैराग्य हुआ कि नहीं ?"

गुरुकृपा, ईश्वरकृपा और शास्त्रकृपा तो अमाप है। किसी के ऊपर कम ज्यादा नहीं है। कृपा हजम करने वाले की योग्यता कम ज्यादा है। योग्यता लाने का पुरुषार्थ करना है, ईश्वर पाने का नहीं।

गुरु जिस साधक या शिष्य की बेईज्जती करके जीवन सुधारते हैं उनकी इज्जत आखिर में बढ़ती है। गुरु द्वारा की गई बेइज्जती सहन नहीं करने से बाद में शिष्य के जीवन में जो बेइज्जती होती है वह कितनी भयंकर होती है !

जो सदभागी शिष्य गुरु की धमकियाँ, डाँट-फटकार सहकर आगे बढ़ता है, खुद यमराज भी उसकी इज्जत करते हैं।

गुरु के कटुवचन जो हँसते हुए स्वीकार कर लेता है उसमें जगत भर के विष हजम करने का सामर्थ्य आ जाता है।

गुरुकृपा हुई तो समझना कि आनन्द के खजाने खुलने लगे।

अध्यात्म मार्ग में प्रवेश कराने वाले ज्ञानी और फकीर लोग एक दृष्टिमात्र से अध्यात्म के जिज्ञासु को जान लेते है, उसकी योग्यता प्रगट हो जाती है। इसलिए आज तक ऐसे जिज्ञासुओं को चुनने के लिये प्रवेशपत्र नहीं निकाले गये।

पति में परमात्मा को देखने लगोगे तो जल्दी नहीं दिखेगा क्योंकि अभी पति ने भी खुद में परमात्मा नहीं देखा है। पत्नी में परमात्मा को देखने लगोगे तो जल्दी नहीं दिखेगा क्योंकि अभी पत्नी ने भी खुद में परमात्मा को नहीं देखा है। गुरु ने खुद में परमात्मा को देखा है, पूर्णतया साक्षात्कार किया है। वहाँ पर्दा पूरा हट चुका है। गुरु परमात्मा के ही स्वरूप हैं। वास्तव में तो पति भी परमात्मा का स्वरूप है, पत्नी भी परमात्मा का स्वरूप है, अरे कुत्ता भी परमात्मा का ही स्वरूप है, लेकिन वहाँ अभी पर्दा हटा नहीं है। गुरु में वह पर्दा हट चुका है। अतः गुरु में परमात्मा को निहारो। तुम जल्दी सफल हो जाओगे।

फकीर की अमृतवाणी सबको ऐसे ही हजम नहीं होती। इसीलिए प्रयोगशील बनकर फकीर लोग अहं पर चोट करके सत्य का द्वार खोलने का प्रयास करते हैं। सदभागी साधक यह मर्म समझ लेते हैं लेकिन व्यवहार में अपने को चतुर मानने वाले लोग इस दिव्य लाभ से वंचित रह जाते हैं। ऐसे लोग जहाँ अपनी प्रशंसा होती है वहीं रुकते हैं।

गुरुदेव के चरणों की पावन रज आदर से जो अपने सिर चढ़ाता है उसकी चरणरज लेने के लिए दुनियाँ के लोग लालायित रहते हैं।

प्रारंभ में गुरु का व्यवहार चाहे विष जैसा लगता हो लेकिन परिणाम में अमृततुल्य फल देता है।

गुरु की बात को ठुकराने वाले को जगत और अन्त में यमदूत भी ठोकर मारते हैं।

गुरुदेव जो देना चाहते हैं वह कोई ऐरा-गैरा पदार्थ टिक नहीं सकता है। इसलिए सदगुरु अपने प्यारे शिष्य को चोट मार मारकर मजबूत बनाते हैं, कसौटियों में कसकर योग्य बनाते हैं।

जब-जब, जहाँ-जहाँ आपके भीतर कर्त्तापन अंगड़ाइयाँ लेने लगे तब-तब, वहाँ-वहाँ जैसे मूर्तिकार मूर्ति बनाते वक्त हथौड़ी और छेनी से पत्थर को काट काटकर अनावश्यक हिस्से को हटाता है वैसे ही, गुरु अपनी कुशलता से तुम्हारे अहंकार को हटाते रहते हैं। जीवित सदगुरु के सान्निध्य का लाभ जितना हो सके अधिकाधिक लो। वे तुम्हारे अहंकार को काट कूट कर तुम्हारे शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर देंगे।

आत्मानन्द देने वाली गुरुकृपा मिलने के बाद भी विषय सुख के पीछे भटकना, लोगों पर प्रभाव डालने के लिए टिपटाप करना तथा शरीर को सजाने में जीवन का नूर खो देना यह तो मूर्खता की पराकाष्ठा है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पुरुषार्थ

ऐ मनुष्यदेह में सोये हुए चैतन्यदेव ! अब जाग जा। अपने को जान और स्वावलम्बी हो जा। आत्म-निर्भरता ही सच्चा पुरुषार्थ है।

जब तुम अपनी सहायता करते हो तो ईश्वर भी तुम्हारी सहायता करता ही है। फिर दैव (भाग्य) तुम्हारी सेवा करने को बाध्य हो जाता है।

विश्व में यदि कोई महान् से भी महान् कार्य है तो वह है जीव को जगाकर उसे उसके शिवत्व में स्थापित करना, प्रकृति की पराधीनता से छुड़ाकर उसको मुक्त बनाना। ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के सान्निध्य में यह कार्य स्वाभाविक रूप से हुआ करता है।

जैसे प्रकाश के बिना पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना कोई सिद्धि नहीं होती। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है और दैव के आश्रय होकर समझता है कि "दैव हमारा कल्याण करेगा" वह कभी सिद्ध नहीं होगा।

पुरुषार्थ यही है कि संतजनों का संग करना और बोधरूपी कलम और विचाररूपी स्याही से सत्शास्त्रों के अर्थ को हृदयरूपी पत्र पर लिखना।

जैसे कोई अमृत के निकट बैठा है तो पान किये बिना अमर नहीं होता वैसे ही अमृत के भी अमृत अन्तर्यामी के पास बैठकर भी जब तक विवेक-वैराग्य जगाकर हम आत्मरस का पान नहीं करते तब तक अमर आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

जो 'भाग्य में होगा वही मिलेगा' ऐसा जो कहता है वह मूर्ख है। पुरुषार्थ का नाम ही भाग्य है। भाग्य शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ है।

अपने मन को मजबूत बना लो तुम पूर्णरूपेण मजबूत हो। हिम्मत, दृढ़ संकल्प और प्रबल पुरुषार्थ से ऐसा कोई ध्येय नहीं है जो सिद्ध न हो सके।

साधक भी यदि पूर्ण उत्साह के साथ अपनी पूरी चेतना आत्मस्वरूप के पहचानने में लगा दे तो जिसमें हजारों संत उत्पन्न होकर विलीन हो गये उस परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है।

जीवन गढ़ने के लिए ही है। उसको आकार देने वाला कोई सदगुरु मिल जाय ! बस, फिर तुम्हें सिर्फ मोम जैसा नर्म बनना है। सदगुरु अपना कार्य करके ही रहेंगे। उनकी कृपा किसी से बाधित नहीं होती। उनके द्वारा अनुशासित होने का उत्साह हममें होना चाहिए। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अहं

परमात्मा हृदय में ही विराजमान है। लेकिन अहंकार बर्फ की सतह की तरह आवरण बनकर खड़ा है। इस आवरण का भंग होते ही पता चलता है कि मैं और परमात्मा कभी दो न थे, कभी अलग न थे।

वेदान्त सुनकर यदि जप, तप, पाठ, पूजा, कीर्तन, ध्यान को व्यर्थ मानते हो और लोभ, क्रोध, राग, द्वेष, मोहादि विकारों को व्यर्थ मानकर निर्विकार नहीं बनते हो तो सावधान हो जाओ। तुम एक भयंकर आत्मवंचना में फँसे हो। तुम्हारे उस तथाकथित ब्रह्मज्ञान से तुम्हारा क्षुद्र अहं ही पुष्ट होकर मजबूत बनेगा।

आप किसी जीवित आत्मज्ञानी संत के पास जायें तो यह आशा मत रखना कि वे आपके अहंकार को पोषण देंगे। वे तो आपके अहंकार पर ही कुठाराघात करेंगे। क्योंकि आपके और परमात्मा के बीच यह अहंकार ही तो बाधा है।

अपने सदगुरु की कृपा से ध्यान में उतरकर अपने झूठे अहंकार को मिटा दो तो उसकी जगह पर ईश्वर आ बैठेगा। आ बैठेगा क्या, वहाँ ईश्वर था ही। तुम्हारा अहंकार मिटा तो वह प्रगट हो गया। फिर तुम्हें न मन्दिर जाने की आवश्यकता, न मस्जिद जाने की, न गुरुद्वारा जाने की और न ही चर्च जाने की आवश्यकता, क्योंकि जिसके लिए तुम वहाँ जाते थे वह तुम्हारे भीतर ही प्रकट हो गया।

निर्दोष और सरल व्यक्ति सत्य का पैगाम जल्दी सुन लेता है लेकिन अपने को चतुर मानने वाला व्यक्ति उस पैगाम को जल्दी नहीं सुनता।

मनुष्य के सब प्रयास केवल रोटी, पानी, वस्त्र, निवास के लिए ही नहीं होते, अहं के पोषण के लिए भी होते हैं। विश्व में जो नरसंहार और बड़े बड़े युद्ध हुए हैं वे दाल-रोटी के लिए नहीं हुए, केवल अहं के रक्षण के लिए हुए हैं।

जब तक दुःख होता है तब तक समझ लो कि किसी-न-किसी प्रकार की अहं की पकड़ है। प्रकृति में घटने वाली घटनाओं में यदि तुम्हारी पूर्ण सम्मति नहीं होगी तो वे घटनाएँ तुम्हें परेशान कर देंगी। ईश्वर की हाँ में हाँ नहीं मिलाओ तब तक अवश्य परेशान होगे। अहं की धारणा को चोट लगेगी। दुःख और संघर्ष आयेंगे ही।

अहं कोई मौलिक चीज नहीं है। भ्रान्ति से अहं खड़ा हो गया है। जन्मों और सदियों का अभ्यास हो गया है इसलिए अहं सच्चा लग रहा है।

अहं का पोषण भाता है। खुशामद प्यारी लगती है। जिस प्रकार ऊँट कंटीले वृक्ष के पास पहुँच जाता है, शराबी मयखाने में पहुँच जाता है, वैसे ही अहं वाहवाही के बाजार में पहुँच जाता है।

सत्ताधीश दुनियाँ को झुकाने के लिए जीवन खो देते हैं फिर भी दुनियाँ दिल से नहीं झुकती। सब से बड़ा कार्य, सब से बड़ी साधना है अपने अहं का समर्पण, अपने अहं का विसर्जन। यह सब से नहीं हो सकता। सन्त अपने सर्वस्व को लुटा देते हैं। इसीलिए दुनियाँ उनके आगे हृदयपूर्वक झुकती है।

नश्वर का अभिमान डुबोता है, शाश्वत का अभिमान पार लगाता है। एक अभिमान बन्धनों में जकड़ता है और दूसरा मुक्ति के द्वार खोलता है। शरीर से लेकर चिदावली पर्यंत जो अहंबुद्धि है

वह हटकर आत्मा में अहंबुद्धि हो जाय तो काम बन गया। 'शिवोऽहम्.... शिवोऽहम्....' की धुन लग जाय तो बस.....!

मन-बुद्धि की अपनी मान्यताएँ होती हैं और अधिक चतुर लोग ऐसी मान्यताओं के अधिक गुलाम होते हैं वे कहेंगेः "जो मेरी समझ में आयेगा वही सत्य। मेरी बुद्धि का निर्णय ही मानने योग्य है और सब झूठ....।"

नाम, जाति, पद आदि के अभिमान में चूर होकर हम इस शरीर को ही "मैं" मानकर चलते हैं और इसीलिए अपने कल्पित इस अहं पर चोट लगती है तो हम चिल्लाते हैं और क्रोधाग्नि में जलते हैं।

नश्वर शरीर में रहते हुए अपने शाश्वत स्वरूप को जान लो। इसके लिए अपने अहं का त्याग जरूरी है। यह जिसको आ गया, साक्षात्कार उसके कदमों में है।

परिच्छिन्न अहंकार माने दुःख का कारखाना। अहंकार चाहे शरीर का हो, मित्र का हो, नाते-रिश्तेदारों का हो, धन-वैभव का हो, शुभकर्म का हो, दानवीरता का हो, सुधारक का हो या सज्जनता का हो, परिच्छिन्न अहंकार तुमको संसार की भट्ठी में ही ले जायगा। तुम यदि इस भट्ठी से ऊबे हो, दिल की आग बुझाना चाहते हो तो इस परिच्छिन्न अहंकार को व्यापक चैतन्य में विवेक रूपी आग से पिघला दो। उस परिच्छिन्न अहंकार के स्थान पर "मैं साक्षात् परमात्मा हूँ", इस अहंकार को जमा दो। यह कार्य एक ही रात्रि में हो जायेगा ऐसा नहीं मानना। इसके लिए निरन्तर पुरुषार्थ करोगे तो जीत तुम्हारे हाथ में है। यह पुरुषार्थ माने जप, तप, योग, भक्ति, सेवा और आत्म-विचार।

बाहर की सामग्री होम देने को बहुत लोग तैयार मिल जायेंगे लेकिन सत्य के साक्षात्कार के लिए अपनी स्थूल और सूक्ष्म सब प्रकार की मान्यताओं की होली जलाने लिए कोई कोई ही तैयार होता है।

किसी भी प्रकार का दुराग्रह सत्य को समझने में बाधा बन जाता है।

जब क्षुद्र देह में अहंता और देह के सम्बन्धों में ममता होती है तब अशांति होती है।

जब तक 'तू' और 'तेरा' जिन्दे रहेंगे तब तक परमात्मा तेरे लिये मरा हुआ है। 'तू' और 'तेरा' जब मरेंगे तब परमात्मा तेरे जीवन में सम्पूर्ण कलाओं के साथ जन्म लेंगे। यही आखिरी मंजिल है। विश्व भर में भटकने के बाद विश्रांति के लिए अपने घर ही लौटना पड़ता है। उसी प्रकार जीवन की सब भटकान के बाद इसी सत्य में जागना पड़ेगा, तभी निर्मल, शाश्वत सुख उपलब्ध होगा।

अपनी कमाई का खाने से ही परमात्मा नहीं मिलेगा। अहंकार को अलविदा देने से ही परमात्मा मिलता है। तुम्हारे और परमात्मा के बीच अहंकार ही तो दीवार के रूप में खड़ा है।

जब कर्म का भोक्ता अहंकार नहीं रहता तब कर्मयोग सिद्ध होता है। जब प्रेम का भोक्ता अहंकार नहीं रहता तब भक्तियोग में अखण्ड आनन्दानुभूति होती है। जब ज्ञान का भोक्ता अहंकार नहीं रहता तब ज्ञानयोग पूर्ण होता है।

कुछ लोग सोचते हैं- प्राणायाम-धारणा-ध्यान से या और किसी युक्ति से परमात्मा को ढूँढ निकालेंगे। ये सब अहंकार के खेल हैं, तुम्हारे मन के खेल हैं। जब तक मन से पार होने की तैयारी नहीं होगी, अपनी कल्पित मान्यताओं को छोड़ने की तैयारी नहीं होगी, अपने कल्पित पोपले व्यक्तित्व को विसर्जित करने की तैयारी नहीं होगी तब तक भटकना चालू रहेगा। यह कैसी विडम्बना है कि परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, तुमसे पृथक नहीं है फिर भी उससे अनभिज्ञ हो और संसार में अपने को चतुर समझते हो। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रद्धा-भक्ति-समर्पण

श्रद्धावान ही शास्त्र और गुरू की बात सुनने को तत्पर होता है। श्रद्धावान ही नेत्र, कर्ण, वाचा, रसना आदि इन्द्रियों को संयम में रखता है, वश में रखता है। इसलिए श्रद्धावान ही ज्ञान को उपलब्ध होता है। उस ज्ञान के द्वारा ही उसके भय, शोक, चिन्ता, अशांति, दुःख सदा के लिए नष्ट होते हैं।

श्रद्धा ऐसी चीज है जिससे सब अवगुण ढक जाते हैं। कुतर्क और वितण्डावाद ऐसा अवगुण है कि अन्य सब योग्यताओं को ढक देता है।

विनम्र और श्रद्धायुक्त लोगों पर सन्त की करूणा कुछ देने को जल्दी उमड़ पड़ती है।

भक्ति करे कोई सूरमा जाति वरण कुल खोय..... इसीलिए भक्तों के जीवन कष्ट से भरपूर बन जाते हैं। एक भक्त का जीवन ही स्वयं भक्ति शास्त्र बन जाता है। ईश्वर के प्रादुर्भाव के लिए भक्त अपना अहं हटा लेता है, मान्यताओँ का डेरा-तम्बू उठा लेता है।

आज हम लोग भक्तों की जय जयकार करते हैं लेकिन उनके जीवन के क्षण क्षण कैसे बीत गये यह हम नहीं जानते, चुभे हुए कण्टकों को मधुरता से कैसे झेले यह हम नहीं जानते।

संसार के भोग वैभव छोड़कर यदि प्रभु के प्रति जाने की वृत्ति होने लगे तो समझना कि वह तुम्हारे पूर्वकाल के शुभ संस्कारों का फल है।

ईमानदारी से किया हुआ व्यवहार भक्ति बन जाता है और बेईमानी से की हुई भक्ति भी व्यवहार बन जाती है।

भगवान का सच्चा भक्त मिलना कठिन है। एक हाथ कान पर रखकर दूसरा हाथ लम्बा करके अपने साढ़े तीन इंच का मुँह खोलकर 'आ....आ....' आलाप करने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, लेकिन सच्चे भक्त नहीं मिलते।

परमात्मा से मिलने की प्रबल हृदय में होनी चाहिए। ढोलक हारमोनियम की आवाज वहाँ नहीं पहुँच सकती है लेकिन पवित्र हृदय की प्रबल इच्छा की आवाज वहाँ तुरन्त पहुँच जाती है।

ऐसी अक्ल किस काम की जो ईश्वर से दूर ले जाये ? ऐसा धन किस काम का जो लुटते हुए आत्मधन को न बचा सके ? ऐसी प्रतिष्ठा किस काम की जो अपनी ईश्वरीय महिमा में प्रतिष्ठित न होने दे ? परन्तु तथाकथित सयाने लोग उन नश्वर खिलौनों को इकट्ठे करने में अपनी चतुराई लगाते हैं। उनके लिए ईश्वर का बलिदान दे देते हैं पर भक्त ईश्वर के लिए नश्वर खिलौनों का बलिदान दे देता है।

आत्मशान्ति की प्राप्ति के लिए समय अल्प है, मार्ग अटपटा है। खुद को समझदार माननेवाले बड़े बड़े तीसमारखाँ भी इस मार्ग की भूलभूलैया से बाहर नहीं निकल पाये। वे जिज्ञासु धन्य हैं जिन्होंने सच्चे तत्त्ववेत्ताओं की छत्रछाया में पहुँच कर साहसपूर्वक आत्मशांति को पाने के लिए कमर कसी है।

दुःख से आत्यान्तिक मुक्ति पानी हो तो संत का सान्निध्य प्राप्त कर आत्मदेव को जानो।

महापुरुषों के चरणों में निष्काम भाव से रहकर उनके द्वारा निर्दिष्ट साधना में लग जाने से लक्ष्यसिद्धि दूर नहीं रहती।

देवी-देवताओं की पूजा करना, घण्टे-नगाड़े बजाना, आरती करना यह सब बैलगाड़ी का मार्ग है। जो अपना अहं मिटाने के लिए तैयार हो गया, जिसको समर्पण आ गया उसके लिए हवाई जहाज का मार्ग है। ऐसे साधकों को सदगुरु ढूँढने नहीं जाना पड़ता। सदगुरु ही ऐसों को ढूँढ लेते हैं।

साधक और संत के बीच, शिष्य और गुरु के बीच एक निर्दोष प्रेम जब छलकता है तब एक दिल से प्रेम ढुलता है और दूसरे दिल में भर जाता है। संत का प्रेम कितना भी ढुले लेकिन वह दिल कभी खाली नहीं होता है और हजार हजार दिल रूपी घड़े भर जाते हैं।

जब हमारे अन्दर कर्तृत्व नहीं होता है और हम अहोभाव से भर जाते हैं उस वक्त जो घटना घटती है वह भगवान की लीला होती है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निर्भयता

तुम्हारे भीतर वह निर्भयस्वरूप आत्मदेव बैठा हुआ है, फिर भी तुम भयभीत होते हो ? अपने निर्भय स्वरूप को जानो और सब निर्बलताओं से मुक्त हो जाओ। उखाड़ फेंको अपनी सब गुलामियों को, कमजोरियों को। दीन-हीन-भयभीत जीवन को घसीटते हुए जीना भी कोई जीवन जीना है ?

यदि तुमको स्वर्ग का फरिश्ता बनाया जाय या मोतियों का कोष दिया जाय और तुम्हारी प्रसन्नता या निर्भयता पर रोक लगाई जाय तो वह पद या मोतियों का कोष भी ठुकरा देना।

जो भयभीत है उसे लोग और भयभीत करते हैं और जो निर्भय है उसके आगे संसार झुकता है। यदि तुम निर्भय हो, प्रसन्न हो तो दुःखी व्यक्ति भी तुम्हारे पास आकर प्रसन्न हो उठेगा, वह अपना दुःख भूल जायेगा और यदि तुम भयभीत हो तो कुत्ते का पिल्ला (कुरकुरिया) भी तुम्हारे पीछे दौड़कर तुम्हें भयभीत करने का मजा ले लेगा।

राजा होने से निर्भयता नहीं आती, नेता होने से निर्भयता नहीं आती, पैसा होने से निर्भयता नहीं आती, प्रसिद्धि होने से निर्भयता नहीं आती, अधिक लोग मानने लगे इससे निर्भयता नहीं आती, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होने से भी निर्भयता नहीं आती। निर्भयता तो भीतर की स्थिति है। निर्भयता तो जो भीतर से निर्भय हो चुके हैं, उनका संग करने से आती है।

मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है परम निर्भयता। जो परम निर्भय हो गया अपने आत्मस्वरूप को जानकर, उसे फिर किसी प्रकार की कोई उपलब्धि करना शेष नहीं रहता।

तलवार या बन्दूक रखने वाले तो निर्भय होते ही होंगे इस भ्रांति में नहीं पड़ना। निर्भयता भीतर की चीज है।

बन्दूक या रायफल जैसे बाहरों साधनों के आधार पर टिकी निर्भयता निर्भयता नहीं है। वह निर्भयता के नाम पर धोखा है।

भय मनुष्य जीवन का कलंक है।

तुम ऐसे निर्भय हो जाओ कि तुम्हारी निर्भयता को देखकर सामने से आती हुई मौत भी भय से काँप उठे।

जो भीतर से निर्भय होता है उसके सन्मुख रीछ और सिंह जैसे खूंखार और हिंसक पशु भी अपना हिंसक स्वभाव भूल जाते है। परम निर्भयता तो ऐसा अमृत है कि मृत्यु भी लौट जाती है, यम का डंडा भी निस्तेज हो जाता है, अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित हो जाते हैं और प्रकृति भी अपने नियम बदलकर व्यवहार करती है।

ऐसा कोई गुण नहीं है जो परम निर्भयता से पैदा न होता हो और ऐसा कोई दुर्गुण नहीं है जो भय से पैदा न होता हो।

यह दृश्य संसार इन्द्रजाल की तरह मिथ्या है। अतः उसमें आसक्त होना या उससे भयभीत होना व्यर्थ है।

साधना के राह पर हजार विघ्न होंगे, लाख-लाख काँटे होंगे। उन सब पर निर्भयतापूर्वक पैर रखोगे तो वे काँटे फूल बन जायेंगे।

'हमारा सुख कहीं छिन न जाय' ऐसा भयभीत जीवन भी कोई जीवन है ? यह तो मौत से भी बदतर है। इसलिए निर्भय जीवन जीना ही असली जीवन है।

साधना-मार्ग में पतन होना यह पाप नहीं है लेकिन पतन होने के बाद पड़े ही रहना, उठना नहीं, यह पाप है। पतन और असफलता से डरो नहीं। साधना के मार्ग पर हजार बार

निष्फलता मिले फिर भी रुको मत। पीछे न मुड़ो। निर्भयतापूर्वक साहस जारी रखो। तुम अवश्य सफल हो जाओगे।

निर्भयता ही जीवन है, भय ही मृत्यु है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विवेक-आत्मविचार

मिथ्या में सत्य को जान लेना, नश्वर में शाश्वत को खोज लेना, अनात्मा में आत्मा को पहचान लेना और आत्ममय होकर जीना यह विवेक है।

सुख और समृद्धि में विवेक सोता है। दुःख में विवेक जागता है।

विवेक-वैराग्यसम्पन्न शिष्य को समर्थ गुरु मिल जाय, फिर क्या बाकी रहेगा ? थोड़े ही समय में कार्य हो जायेगा, परम तत्त्व ज्ञात हो जायगा और साक्षात्कार हो जायगा।

जहाँ विवेक का हथियार चलता है वहाँ आवेग का हथियार शांत हो जाता है।

जो समझ सत्य को जीवन में उतारे वही समझ सच्ची समझ है, और सब नासमझी है।

समय बहुत कीमती है। करोड़ों रूपये खर्च करोगे फिर भी एक क्षण भी नया नहीं बना सकते। समझ बढ़ा सकते हो, ज्ञान बढ़ा सकते हो लेकिन आयु नहीं बढ़ा सकते। अतः विचारवान बनो। आत्मनिष्ठा में जम जाओ।

अपने आपका खर्च हो जाना एक बात है और अपने आपकी खबर हो जाना, आत्मस्वरूप की पहचान हो जाना तो बात ही निराली है।

मात्र पाठ-पूजा, देव-दर्शन, नहाना-धोना, संध्या करना, माला घुमाना इत्यादि से धर्म की समाप्ति नहीं होती। प्रारंभ में इन सबकी आवश्यकता है और जब तक हृदय में साक्षात्कार की परम शांति का अनुभव न हो जाय तब तक निरन्तर साधना में लगे रहना। मैं कौन हूँ ? पूजा पाठ करने वाला कौन है ? आत्मा और परमात्मा के बीच कितना अन्तर है ? ईश्वर और आत्म-साक्षात्कार के बीच क्या फर्क है ? किताबी ज्ञान, पंडितों के ज्ञान और परमहंसों के अनुभव में क्या फर्क है ? ये सब प्रश्न एकान्त में बैठकर गहराई से सोचने चाहिए। परमहंसों के मुखारविन्दों से इसके बारे में जो सुना हो उसका चिन्तन करना चाहिए।

मन द्वारा नहीं बल्कि प्रज्ञा द्वारा अनुभव होता है कि अहंकार के अन्दर बाहर सर्वत्र परमात्मा है। लहर के अन्दर बाहर सर्वत्र सागर है।

आज तक तुमने मन की सब बातें मानी है, सत्संग द्वारा प्राप्त विवेक की बात कहाँ मानी है ? कुटुम्बीजन, मित्र, साहब, नेता लोगों की बातें मानी हैं। अब कोई सच्चे साधु-संत की बात मानकर देखो, उनके ज्ञानोपदेश का आदर करके देखो, अमल करके देखो फिर अनुभव करो कि तुम आनन्दस्वरूप होकर छलकते हो कि नहीं। ऐसी कौन-सी चिन्ता है कि जिसने तुम्हें बाँधा है ? तुम इसी समय मुक्ति का अनुभव करो।

विवेक, विचार, वैराग्य और आत्मचिन्तन के सिवा और सब खिलौने हैं। खिलौनों में रुक जाओगे तो जीवन खिलेगा नहीं।

किसी भी चीज को छोड़ना हो तो छोड़ो लेकिन दिल में द्वेष लाकर नहीं। अलबत्ता, प्रेम से किसी भी चीज को छोड़ना कठिन है लेकिन द्वेष से छोड़ना तो असंभव है।

निष्काम भाव से साधन, भजन, त्याग, तपस्या, जप, तप, व्रत, आदि करने से अन्तःकरण में ऐसा सात्त्विक विचार उठता है कि 'यह सब व्यवहार करने से आखिर क्या ? हम कौन हैं और यह सब क्यों कर रहे हैं ?' संसार का मिथ्यापन समझ में आ जाने से शाश्वत सत्य परमात्मा की ओर हमारी वृत्ति जाती है। प्रकृति के प्रभाव से मुक्त होकर आत्माभिमुख होना ही सब साधनाओं का लक्ष्य है।

साक्षात्कार के सदस्य का यदि प्रवेश-पत्र भरना हो तो जाति, लिंग, उम्र, अभ्यास, देश इत्यादि के प्रश्न नहीं होते लेकिन भोग में रूचि है ? ध्यान करना भाता है ? संसार में मधुरता लगती है.....? ऐसे प्रश्न होते हैं। 'तुमने क्या शिक्षा पायी है ? कौन सी भाषा बोलते हो ? स्त्री हो या पुरुष ? अमीर हो या गरीब ? किस देश के नागरिक हो....?' इत्यादि प्रश्न आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वालों के लिए बिल्कुल प्रस्तुत नहीं हैं।

आत्म-विचार करें – मैं कौन हूँ ? क्या मैं शरीर हूँ ? नहीं। मैं मन हूँ ? नहीं। मैं बुद्धि हूँ ? नहीं। फिर.... मैं कौन हूँ ? बचपन में नहीं हूँ। जवानी में नहीं हूँ। बचपन और जवानी को जानने वाला मैं हूँ।

काम, क्रोध आदि विकार हमारा स्वभाव नहीं है। क्योंकि हम आत्मा हैं। आत्मा तो सत् चित् आनन्दस्वरूप है और शरीर जड़ है। शरीर में ये होने का प्रश्न नहीं नहीं उठता। वस्तुतः वे हैं ही नहीं। फिर भी इनसे हम परेशान होते हैं। यही माया है।

मूर्ख लोगों की मान्यताओं और अज्ञानी जनों के अभिप्रायों पर कब तक जीवन व्यर्थ बिताओगे ? जरा सोचोः यहाँ क्यों आये हो और क्या कर रहे हो ?

हम बाहर का बहुत कुछ जानते हैं लेकिन संसार-सागर से तरना नहीं जानेंगे तो सब व्यर्थ हो जायेगा।

सत्य को जीवन में प्रकाशित कर लेना, स्वरूप का साक्षात्कार कर लेना यह कोई कठिन कार्य नहीं है। आत्मा तुमसे दूर नहीं है। तुम्हारा शरीर तुमसे जितना नजदीक है, तुम्हारा मन तुमसे जितना नजदीक है, तुम्हारी बुद्धि तुमसे जितनी नजदीक है उससे भी ज्यादा तुम्हारी आत्मा तुमसे नजदीक है। अरे, ऐसा कहना भी उचित नहीं, क्योंकि तुम आत्मा ही हो। फिर दूर क्या ? नजदीक क्या ?

आप सच्चिदानन्द हैं, निजानन्द हैं। आप आत्मा हैं, शरीर नहीं। आप कभी न तो जन्मते हैं न मरते हैं। शरीर किसी का भी हो वह नश्वर ही होगा। पति का हो या पत्नी का, गुरु का हो या भक्त का, शरीर तो नश्वर ही है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निष्काम कर्म-उपासना-आचारशुद्धि

लोहे से लोहा कटता है, काँटे से काँटा निकलता है उसी प्रकार शुभ कर्मों से कर्मों का उच्छेद होता है। कर्म से आत्मज्ञान नहीं होता लेकिन सदियों से इकट्ठे हुए कर्ममल को हटाने के लिए शुभ कर्म, निष्काम कर्म अत्यन्त आवश्यक है। तभी आत्मज्ञान के लिए भूमिका बनती है।

कर्म ऐसे करो कि परम नशे में झुमाने वाले अमृत के पास ले जाये। ध्यान इतना गहरा करो कि मौत पर तुम्हारी नजर पड़ जाय तो मौत भी मधुर हो जाय।

जो कर्म करने से अपनी मुक्ति का अनुभव रो वह सब कर्म पुण्य है और जिस कर्म से बन्धन महसूस हो, जो कर्म करने में आत्मग्लानि हो वह कर्म पाप है, महापाप है।

निष्काम कर्म और उपासना के क्रमसमुच्चय से अन्तःकरण के मल और विक्षेप दूर होते हैं। बाद में ज्ञानी महापुरुष की कृपा से, समर्थ सदगुरु के धक्के से आवरण भी हट जाता है और प्रकाशों को प्रकाशने वाला तुम्हारा आत्मस्वरूप प्रकाशित हो जाता है। सदगुरु का कार्य तो 'तत्त्वमसि' इतना ही बोध कराने का है लेकिन उस घड़ी को लाने के लिए सब साधनाएँ करनी पड़ती हैं। जो लोग पंडितों से वेदान्त सुनकर ही अपने आपको 'अहं ब्रह्मास्मि' मान लेते हैं। उन लोगों को वास्तव में ब्रह्मज्ञान होता नहीं। फलतः वे लोग मूढ या ज्ञानबद्ध ही रह जाते हैं। तत्त्वनिष्ठा की मस्ती उनको नहीं आती। अतः साधकों को चाहिए कि जीवन में कर्म और उपासना को यथायोग्य स्थान देकर सदगुरु के सहारे साधना में आगे बढ़ें।

कर्म में फल देने की शक्ति है यह हमारे सन्त महापुरुषों का अनुभव है।

उपासना करने से अपने दोष देखने की और उनका निवारण करने की वृत्ति होती है।

हमें तो दूसरों को देते रहना है, पाने की इच्छा नहीं करनी है। देते रहने से पाने का अधिकार अपने आप आ जाता है।

सांसारिक सम्बन्धों में जो आकर्षण है वह निष्काम कर्म और उपासना से ढीला होता है। वास्तव में निर्लेप और निःसंग परम सम्बन्धी दृष्टा का ज्ञान होते ही और सब सम्बन्ध कल्पित भासने लगते हैं।

परमात्मा मिलेगा नहीं। वह मिला हुआ ही है। वह परिच्छिन्न नहीं है कि अमुक जगह से आयेगा। वह तो सर्वत्र है। उसको देखने की योग्यता कर्म, उपासना और ज्ञान से आती है।

चित्त की चंचलता मिटाने का उपाय है उपासना। उपासना में बहुत शक्ति है। उससे इच्छा पूर्ण होती है। उपासना में किसी एक लक्ष्य को सिद्ध करना होता है, सब वृत्तियाँ एक लक्ष्य में केन्द्रित करनी है। इससे साधक के अन्तःकरण की चंचलता हट जाती है।

निष्काम कर्मी कहेगाः 'मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जाये।' उपासक कहेगाः 'मेरा मंत्र सिद्ध हो जाये, चित्तवृत्तियाँ एकाग्र होकर अपने कारण में लीन हो जाय।' ज्ञानी सब चित्तवृत्तियाँ और चित्त

जिसमें फुरफुराते हैं उस अफुर आकाशरूप अपने आप में स्थित हो जाता है। अंतःकरण से सम्बन्ध विच्छेद कर देता है।

सेवा, दान, पुण्य यदि सकाम भाव से किये जायें तो उनका फल संसार की ओर से मिलता है और यदि निष्कामता से किये जायें तो उनका फल ईश्वर की ओर से मिलता है। संसार की ओर से जो संपदा मिलती है वह भोग और बन्धन बढ़ाती है जब कि ईश्वर की ओर से जो संपदा मिलती है वह मोक्ष का साधन बनती है।

बर्तन को मलना, धोना, शुद्ध करना एक बात है और उस शुद्ध बने हुए बर्तन में खीर पकाकर खाना और तृप्ति का अनुभव करना यह निराली ही बात है। कर्म और उपासना द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करना यह बर्तन मलने के बराबर है। अब तुम उस शुद्ध बने हुए अन्तःकरण में ज्ञानरूपी खीर पका कर खाओ, ब्रह्मानन्द से परम तृप्त बनोष जागो, उठो, हिम्मत करो और इसी जीवन में आत्म-साक्षात्कार का अनुभव करो।

अशुद्ध आचरण से हृदय भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध हृदय में सुख शान्ति का निवास कैसे हो सकता है ? वास्तव में सुख शान्ति हृदय की शुद्धि पर निर्भर है।

जिनको परमार्थ में आगे बढ़ना हो उन्हें अपना हृदय हमेशा शुद्ध रखना चाहिए। किसी के साथ बुरा व्यवहार नहीं करना चाहिए। किसी दिल को ठेस पहुँचाने से उसमें से आह निकलती है जो हमारे पुण्यों को नष्ट करती है।

जिनका हृदय आहार शुद्ध नहीं है, व्यवहार शुद्ध नहीं है उनका हृदय कैसे शुद्ध होगा ? हृदय शुद्ध नहीं होगा तो जीवन कैसे शुद्ध होगा ? अशुद्ध जीवन ईश्वर से एकत्व का अनुभव नहीं कर सकता।

तुम्हारी बुद्धि विकसित हुई कि नहीं ? तुम्हारा हृदय शुद्ध हुआ कि नहीं ? जरा भीतर देखो। तुम्हारा अन्तःकरण जितना शुद्ध होगा, हृदय जितना पवित्र होगा, बुद्धि जितनी विकसित होगी उतना तुम्हारे जीवन में आग्रह कम होगा।

अशुद्ध अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए सेवापरायण होना ठीक है, सत्कर्मपरायण होना ठीक है लेकिन अन्तःकरण को शुद्ध बनाने वाले को अन्तःकरण शान्त बनाने की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

रूपयों में पाप नहीं लेकिन रुपयों से भोग भोगना पाप है। सत्ता में पाप नहीं लेकिन सत्ता से अहंकार बढ़ाना पाप है। अक्ल होने में पाप नहीं लेकिन उस अक्ल से दूसरों को गिराना और अपने अहं को पोषित करना पाप है।

सत्य का मार्ग कभी न छोड़ो। सत्य के द्वारा की हुई कमाई कोई चुरा नहीं सकता। किसी ने ठीक ही कहा हैः

बंदा सत्य न छोड़िये सत छोड़े पत जाय।
सत्य की बांधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय।।

वास्तव में कोई हमें सुख-दुःख नहीं दे सकता या भयभीत नहीं कर सकता। हम ही सत्य छोड़कर अशुद्ध आचरण करते हैं और भय पाते हैं, दुःखी होते हैं। सत्य को कोई हानि नहीं होती। जो सत्य को पकड़ता है उसके अन्दर अपार आत्मिक शक्ति जागृत होती है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

समता

समता निर्विकार मन का परिपाक है।

जिनको समदर्शन होता है। इस जगत में भासमान अनेकत्व में छिपे हुए अपने चैतन्य स्वरूप, आत्मस्वरूप एकत्व का दर्शन होता है उनको भय, शोक आदि का सन्ताप नहीं रहता।

सदा शान्त रहो, निर्विकार रहो। समत्व में स्थिर होने की चेष्टा करो।

विषमता से बचने के लिए न किसी की स्तुति करो, न किसी की निन्दा करो। कोई तुम्हारी निन्दा करे तो मौन रहो, शान्त रहो, सम रहो।

बुद्धिमानी तो इसमें है कि जीवन में हिला देने वाले प्रसंग आ जाय, पैरों को डगमगाने वाले प्रसंग आ जाय परन्तु चेहरे पर दुःख का एक निशान भी न पड़े।

साधक वह है जो हजार-हजार विघ्न आय तो भी न रुके, लाख लाख प्रलोभन आये तो भी न फँसे। भय के हजार प्रसंग आये तो भी भयभीत न हो और लाख धन्यवाद मिले तो भी अहंकारी न हो।

अपने स्वभाव में से आवेश को सर्वथा निर्मूल कर दो। आवेश बहकर कोई निर्णय मत लो, कोई क्रिया मत करो। सदा शांत वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो। विचारवन्त एवं प्रसन्न रहो। स्वयं अचल रहकर सागर की तरह सब वृत्तियों को, तरंगों को अपने भीतर समा लो।

जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो। सब से स्नेह रखो। दिल को व्यापक रखो। संकुचितता का निवारण करते रहो। खंडनात्मक वृत्ति का सर्वथा त्याग करो। आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो। कुछ ही दिनों के इस सघन प्रयोग के बाद अनुभव होने लगेगा किः 'भूतकाल में नकारात्मक स्वभाव, संशयात्मक-हानिकारक कल्पनाओं ने जीवन को कुचल डाला था, विषैला कर दिया था। अब निश्चयबल के चमत्कार का पता चला। अन्तरतम में आविर्भूत दिव्य खजाना अब मिला। प्रारब्ध की बेड़ियाँ अब टूटने लगीं।' अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मृत्यु

मौत से मनुष्य डरता है, जीवन में पग पग पर छोटी मोटी परिस्थितियों से घबरा उठता है। ऐसा भयभीत जीवन भी कोई जीवन है ? जहाँ पग पग पर मृत्यु का भय प्रकम्पित करता रहे ? ऐसा नीरस जीवन, भयपूर्ण जीवन मौत से भी बदतर है। ऐसा जीवन जीने में कोई सार

नहीं। यह जीवन जीवन नहीं है। इसलिए कहता हूँ कि असली जीवन जीना हो, निर्भय जीवन जीना हो तो फकीरी मौत को एक बार जान लो।

मौत तो इतनी प्यारी है कि उसे यदि आमंत्रित किया जाय तो अमृतमय जीवन के द्वार खोल देती है।

एक ऐसी जगह है जहाँ मौत की पहुँच नहीं, जहाँ मौत का कोई भय नहीं, जिसमें मौत भी भयभीत होती है-उस जगह पर हम बैठे हैं। तुम चाहो तो तुम भी बैठ सकते हो।

मौत तो एक पड़ाव है, एक विश्रान्तिस्थान है। उससे भय कैसा ? यह तो प्रकृति की एक व्यवस्था है।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग, जिसको मृत्यु कहा जाता है वह विश्रामस्थल तो है परन्तु पूर्ण विश्रान्ति उसमें भी नहीं है। यह फकीरी मौत नहीं है। फकीरी मौत तो वह है जिसमें सारी वासनाएँ जड़ सहित भस्म हो जाय।

दिन के भारी काम से थका हुआ मनुष्य जैसे नींद की चाह करता है उसी प्रकार समझदार व्यक्ति मृत्यु से भय न रखकर उसे समझपूर्वक आमंत्रित करके आत्मा में आराम पाता है।

फकीरी मौत ही असली जीवन है। फकीरी मौत अर्थात् स्वयं के अहं की मृत्यु.... स्वयं के जीवभाव की मृत्यु..... मैं देह हूँ, मैं जीव हूँ, इस परिच्छिन्न भाव की मृत्यु... स्वयं की सूक्ष्म वासनाओं की मृत्यु।

एक बार फकीरी मौत में डूबकर बाहर आ जाओ। फिर देखो कि संसार का कौन-सा भय तुम्हें भयभीत कर सकता है। तुम शाहों के शाह हो।

हमारी भूल यह है कि अवस्थाएँ बदलने को हम अपना बदलना मान लेते हैं। वस्तुतः न तो हम जन्मते और न मरते हैं और न ही हम बालक, किशोर, प्रौढ़ और वृद्ध बनते हैं। ये सब हमारी देह के धर्म हैं और हम देह नहीं हैं।

मौत के बाद अपने सब पराये हो जाते हैं। तुम्हारा शरीर भी पराया हो जाता है लेकिन तुम्हारी आत्मा आज तक परायी नहीं हुई।

मौत से भी मौत का भय खराब है। मौत आ जाय यह ठीक है, लेकिन मौत से सदैव भयभीत रहना ठीक नहीं। क्योंकि भय में से ही सारे पाप पैदा होते हैं। भय ही मृत्यु है।

यदि हमने शरीर के साथ अहंबुद्धि की तो हम में भय व्याप्त हो ही जायगा, क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है। उसका परिवर्तन अवश्यंभावी है। उसको तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं रोक सकते। यदि हमने अपने आत्मस्वरूप को जान लिया, स्वरूप में हमारी निष्ठा हो गई तो हम निर्भय हो गये, क्योंकि स्वरूप की मृत्यु होती नहीं। मौत भी उससे डरती है।

यदि मौत पर विजय प्राप्त करनी हो, जीवन को सही तरीके से जीना हो, तो फकीरों के कहे अनुसार आसन करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो, योग करो, आत्मचिन्तन करो और ऐसा पद प्राप्त कर लो कि जहाँ मृत्यु की पहुँच नहीं है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मन

शुभ संकल्प और पवित्र कार्य करने से मन शुद्ध होता है तथा मोक्षमार्ग पर ले जाता है। यही मन अशुभ संकल्प और पापपूर्ण आचरण से अशुद्ध हो जाता है तथा जड़ता लाकर संसार के बंधन में बाँधता है।

जिसने अपना मन जीत लिया उसने समस्त जगत को जीत लिया। वह राजाओं का राजा है, सम्राट है। बल्कि सम्राटों का भी सम्राट है।

मन की चाल बड़ी ही अटपटी है इसलिए गाफिल न रहिएगा। इस पर कभी विश्वास न करें। विषय-विकार में इसे गर्क न होने दें। तरह तरह के तर्क लड़ाकर मन आपको धोखा दे सकता है।

वास्तव में मन की अपनी सत्ता ही नहीं है। आपने ही इसे उपजाया है।

मन की लोलुपता जिन पदार्थों पर हो वे पदार्थ उसे न दें। इससे मन के हठ का शनैः शनैः शमन हो जायगा।

निष्काम भाव से यदि परोपकार करते रहेंगे तो भी मन की मलिनता दूर हो जायगी।

मन के घेरे से बाहर आये बिना, अपनी मान्यताओं के घेरे से बाहर आये बिना सत्य जाना ही नहीं जा सकता।

मन इतना बहिर्मुख हो गया कि एकांत में किसी फकीर की बातें शांति से सुनने के लिए भी तैयार नहीं होता।

जिसने मन को जीता उसने समस्त जगत को जीता। जिसने मन को जीता उसने परमात्म प्राप्ति की।

परमात्मा के सिवाय, अपने वास्तविक स्वरूप के सिवाय कहीं भी मन लगता हो तो समझ लो कि यमदूत हमारे पीछे ही लगे हैं।

अरे नादान मन ! संसार सागर में डूबना अब शोभा नहीं देता। अब परम प्रेम के सागर में डूब जा जिससे और कहीं डूबना न पड़े। तू अमृत में ऐसी डुबकी लगा कि अमृतमय हो जा। यहाँ डूबने में ही सच्चा तैरना है। यहाँ विसर्जित होने में ही सच्चा सर्जन है। इस मृत्यु में ही सच्चा जीवन है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सुख-दुःख-आनन्द-शान्ति

वास्तविक आनन्द अपने स्वरूप में है। इसके अलावा कहीं भी आनन्द दिखता हो तो समझ लो कि अभी अपने दुर्भाग्य का अन्त नहीं आया।

हम इतने बहिर्मुख हो गये है कि भीतर आनन्द का सागर हिलोरे मार रहा है और हम सुख के लिए बाहर कीचड़ कुरद रहे हैं, कचरा रौंद रहे हैं।

तुम यदि बाह्य वस्तुओं के मिलने में सुख मानते हो तो यह तुम्हारा भ्रम है। इन वासनाओं की पूर्ति तुम्हें कभी वह शाश्वत सुख नहीं दे सकती।

सुख या दुःख वस्तु के मिलने या न मिलने में नहीं है। मन उसके भाव अभाव का चिन्तन करता है उस पर सुख दुःख निर्भर है।

सत्य के साक्षात्कार बिना कोई भी व्यक्ति कितना ही भौतिक साधनों का आश्रय ले, वह परम सुखी नहीं हो सकता।

दुःख नाम की वस्तु कहीं है ही नहीं। अज्ञान के कारण ही हम दुःखी होते है। वस्तुतः आनन्द का स्रोत हमारे ही अन्दर हमारा अपना आपा है, हमारा ही आत्मदेव है। उसकी ओर कोई देखता ही नहीं।

दुःख अपनी ही मूर्खता से होता है। दुःख कहीं है नहीं। हमारे मन ने कुछ मान्यताएँ बना रखी हैं। जब उनके प्रतिकूल कुछ होता है तो दुःख होता है। दुःख होता है तो समझ लो कि यह मन की मूर्खता है। उसकी गलत पकड़ है।

लोभ हमको संग्रह में सुख दिखाता है, काम हमको स्त्री में सुख दिखाता है, मद हमको पद-प्रतिष्ठा-यश में सुख दिखाता है परन्तु सच्चा सुख इनमें है नहीं।

माया के तीनों गुणों से पार पहुँचे बिना मनुष्य शान्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता।

मैं देह हूँ और देह के सब व्यवहार सत्य हैं, यह देह भाव निवृत्त हुए बिना और आत्मभाव में स्थिर हुए बिना मनुष्य परम शान्ति नहीं पा सकता।

सुख या दुःख वास्तव में कोई घटना या परिस्थिति में नहीं होता परन्तु उस घटना या परिस्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल मानने की भावना में होता है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीवन

जीवन जीवत्व से ब्रह्मत्व की ओरि विकास की एक प्रक्रिया है।

हे मानव ! इस असार संसार की मिथ्या दौड़ धूप में कब तक दुःखी होना है ? नहाना, धोना, खाना-पीना, रोटी के लिए परिश्रम करना, निद्राधीन होना और वंशवृद्धि करना... यह कोई जीवन की सार्थकता नहीं है। जीवन की सार्थकता तो है अपने आपको जानने में।

रोटी के टुकड़ों की फिकर नहीं करो। जिसने जीवन दिया है वही अनाज भी देगा ही। फिकर करना ही हो तो इस बात की करो कि संसार के बन्धन से मुक्ति कैसे हो।

अपने लिए तो सब जीते हैं। दूसरों के लिए जो जीते हैं उनका जीवन धन्य है।

जीवन में प्रेम ही बाँटो, सुख ही बाँटो, दुःख न बाँटो। प्रेम और सुख बाँटोगे तो बदले में वे ही वापस आकर मिलेंगे। उसे कोई रोक नहीं सकता। .....हाँ बदले की अपेक्षा न रखो।

लोगों को अच्छा लगे इसलिए महँगे वस्त्र पहनना, उस ढंग से जीना यह तो लोगों की गुलामी हुई। लोग हमारे स्वामी हुए। वे हमारे भोक्ता हुए और हम उनके भोग्य हुए। लोग क्या कहेंगे ? लोगों को क्या अच्छा लगेगा ? अरे पागल ! यह नहीं सोचता कि लोकेश्वर को क्या अच्छा लगेगा ? सदगुरु को क्या अच्छा लगेगा ? शरीर को स्वस्थ रखने मात्र के लिए वस्त्रादि होना ठीक है लेकिन उसी में अधिक समय खर्चना, पूरी वृत्ति को लगाना यह जीवनदाता का घोर अपमान है।

बुद्धि रूपी स्त्री भीतर सोये हुए आत्मा रूपी स्वामी को छोड़कर बाह्य पदार्थों रूपी परदेसियों के साथ व्यवहार करती है। प्रेम स्वरूप परमात्मा को छोड़कर परदेसी को प्यार करने जाती है। विषयसुख भोगकर क्षणिक सुखाभास मिलता है लेकिन वह सुखाभास जीवन को अन्धकारमय कन्दरा में ही ले जाता है।

जगत के लोगों को खुश किये लेकिन आत्मदेव खुश नहीं हुए तो क्या खुशी मिली, खाक ? नाते-रिश्तेदारों को प्रसन्न किया लेकिन परमात्मा प्रसन्न नहीं हुए तो क्या प्रसन्नता मिली, खाक ? नश्वर चीजें इकट्ठी करने में जीवन खर्च दिया लेकिन आत्मधन नहीं मिला तो क्या कमाई की, खाक ?

जो शाश्वत है उस परम तत्त्व को जान लो। आप कहेंगेः हम तो गृहस्थ हैं। मैं कहता हूँ कि संन्यासी को योग की जितनी आवश्यकता है उससे ज्यादा आवश्यकता गृहस्थी को है। अपने जीवन को ऋषि जीवन बनाओ। योग के बल से अनेकों की जिन्दगियाँ बदल गई हैं तो तुम्हारी क्यों नहीं बदल सकती ? तुम अंशतः गुमराह हुए हो। यह गलती दूर करनी पड़ेगी। धन्य है उस वैदिक धर्म को कि जिसके कारण भारत जगत का गुरु बना है और भविष्य में भी बना रहेगा। लेकिन.... हमको जागना होगा। खड़ा होना पड़ेगा। जीवन आत्म-साक्षात्कार के लिए मिला है। यही समझाने के लिए विविध आध्यात्मिक उत्सवों की रचना की गई है।

आप अपने दिल की डायरी में सुवर्ण अक्षरों से लिखकर रखें कि प्रकृति में जो कुछ घटना घटती है वह जीव को अपने शिवस्वरूप की ओर ले जाने के लिए ही घटती है।

अपना हृदय विशाल रखो। अपने हृदय को सँभालो। कोई गिरता हो तो उसे थाम लो।

विषय-सेवन विष है, त्याग और संयम अमृत है। क्रोध विष है, क्षमा अमृत है। कुटिलता विष है, सरलता अमृत है। क्रूरता विष है, करूणा अमृत हे। देहाभिमान विष है, आत्मज्ञान अमृत है।

ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसको जीवन में सदा अनुकूलता मिलती रहे। ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसको सदा प्रतिकूलता मिलती रहे। ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसका सदा यश होता रहे या सदा अपयश होता रहे। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

धर्म

आदमी कितना भी धार्मिक हो, कितना भी सच्चा हो, कितना भी पवित्र हो लेकिन गहराई में पूर्ण पवित्रता का अनुभव नहीं होगा, क्योंकि पूर्ण एक परमात्मा है, कर्त्ता कभी पूर्ण नहीं हो सकता।

धार्मिक होने का लक्ष्य है कि तुम सब दुःखों से, सब यात्राओं से ऐसी जगह पहुँच जाओ कि जहाँ से कोई तुम्हें नीचे न गिरा सके। ऐसी समझ पा लो कि तुम्हारी उस व्यापक समझ में अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड डूब जाय।

धार्मिक होना एक बात है, धर्म के फल को पाना दूसरी बात है परन्तु धर्म के आखिरी छोर को पकड़ लेना यह तो निराली बात है। मानव असीम को उपलब्ध हो जाय यह धर्म का आखिरी छोर है।

धर्म के आखिरी अर्थ को जो उपलब्ध हुए हैं वे भगवान का निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। ज्ञानी ऐसे पद पर आरूढ़ है जहा कई भगवान पैदा हो होकर वापस लीन हो गये।

सर्वव्यापक परमात्मा पर दृष्टि रखकर जो सेवापूजा करता है उसको अनन्त फल मिलता है।

धर्म का अर्थ यह है कि तुम्हारी अन्दर की मस्ती से बाहर के वातावरण में मस्ती छा जाय। एक क्षण अन्दर डुबकी लगाकर बाहर निहारो तो प्रसन्नता फैल जाय। क्रोधी आदमी भी पिघल जाय। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ईश्वर

ईश्वर इन आँखों से दिखे ऐसी स्थूल चीज नहीं, क्योंकि इन आँखों से जो दिखेगा, वह सदा नही रहेगा। वह अनित्य होगा, आयेगा और जायेगा, बनेगा और बिगड़ेगा। ईश्वर तो शाश्वत है। ज्ञान-चक्षु से ही वह अनुभव में आता है।

ऐसा नहीं मानना कि भगवान का स्वरूप तुम्हारी धारणा के मुताबिक होगा। जब तुम सत्य को पाओगे तब जानोगे कि आज तक तुम भगवान को जैसा मानते थे वैसा वह नहीं है। आज तुम जिस परमात्मा के विषय में कल्पना करके चलते हो वह परमात्मा तुम आखिरी सत्य जानोगे तब सिद्ध नहीं होगा। परमात्मा तब सिद्ध होगा जब तुम नहीं रहोगे। जब तक तुम रहोगे तब तक परमात्मा सिद्ध नहीं होगा। यदि सिद्ध होता हो तो समझ लेनो कि अभी पूरी पहचान

नहीं हुई। बात जरा अटपटी है। झटपट समझ में नहीं आयेगी। जिसको तुम परमात्मा मानकर सेवा-पूजा करके घर लौटते ही वह परमात्मा का एक स्वरूप हो सकता है, आखिरी स्वरूप नहीं।

मंदिर छोटा बड़ा हो सकता है, मूर्ति छोटी बड़ी हो सकती है लेकिन परमात्मा कभी छोटा बड़ा नहीं हो सकता। मंदिर जीर्णशीर्ण हो सकता है, परमात्मा नहीं। जिसकी स्थापना न कर सको, जिसका निर्माण न कर सको, जिसको बिगाड़ न सको वह परमात्मा है। तुम्हारी मेहनत और कल्पना से जो बन जाय और तुम्हारी नाराजगी से बिगड़ जाय वह तुम्हारा परमात्मा हो सकता है लेकिन सन्तों को जिसकी अनुभूति है वह परमात्मा नहीं होगा।

हिन्दुओं के बनाये हुए ईश्वर को मुसलमान और मुसलमानों के बनाये हुए खुदा को हिन्दू मिटा सकते हैं लेकिन जो स्वयं ईश्वर है, जो स्वयं खुदा है उसको कोई नहीं मिटा सकता।
अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अज्ञान

आत्मतत्त्व नहीं जानने के कारण ही हमको सुख-दुःख की चोट लगती है।

अज्ञानी सोचता है कि जिस प्रकार मैं चाहता हूँ उसी प्रकार सब हो जाय तो मुझे सुख हो। यही मनुष्य का अज्ञान हो।

जगत के बन्धनकारक सम्बन्धों को सत्ता देने वाला दृष्टा इन सम्बन्धों गुम हो गया है। उस परम का पता नहीं और शरीर को ही मैं मानकर सब सम्बन्धों की भ्रमजाल रचते जाते हैं। इन्हीं बन्धनों में जन्म-जन्मांतर बीत गये। आज तक उसका बोझा उठा रहे हैं। पता पल का नहीं, सामान सौ साल का थामे जा रहे है।

जो अस्तित्व है उस अस्तित्व का ज्ञान नहीं है इससे हमारा भय जगहें बदल लेता है लेकिन निर्मूल नहीं होता। संसारी लोग सिखा सिखा कर क्या सिखायेंगे ? वे अज्ञानी संसार का बन्धन ही पक्का करायेंगे। जिस फ्रेम में दादा जकड़े गये, पिता जकड़े गये, उसी फ्रेम में पुत्र को भी फिट करेंगे। बन्धन से छुड़ा तो नहीं सकेंगे।

इस प्रकार सोचना कि ईश्वर हमारे कहने में चले – यह मूर्खता है। यह तुम्हारे मन की गाँठ है। उसको खोलना चाहिए। खोलोगे नहीं तो स्वभाव नहीं बदलेगा और स्वभाव नहीं बदलेगा तो फिर दुःख ही हाथ लगेगा। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मकृपा

दूसरों पर उपकार न कर सको तो कोई ज्यादा चिन्ता की बात नहीं लेकिन कम से कम तुम अपने पर तो उपकार करो। आत्मकृपा करो। जो आदमी अपना उपकार नहीं कर सकता वह यदि दूसरों पर उपकार करने का ठेका ले तो समझो वह खतरनाक आदमी है।

लड़ाई झगड़ा करके दूसरों को सुधारने के लिए बहुत लोग उत्सुक हैं परन्तु अपने को सुधारने के लिए, मन को समझाने के लिए कौन उत्सुक है ? जो अपने को सुधारने के लिए उत्सुक होते हैं, जो ध्यान करते हैं उनकी सोई हुई जीवनशक्ति जाग्रत हो जाती है।

कम से कम तुम अपने आपको सँभालो। दूसरों को नहीं सँभालोगे तो चल जायगा। अपने आपको सँभालोगे तो दूसरे अपने आप सँभल जायेंगे। अपने को नहीं सँभाला तो दूसरों को सँभालने की भ्रांति होगी। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विद्या

जो विद्या हमें अपने आत्मभाव की ओर ले जाय, जीवभाव रूपी दुःख के बन्धन से मुक्ति की ओर ले जाय वही वास्तव में सच्ची विद्या है। यह विद्या है ब्रह्मविद्या। सब दुःखों से छूटने का यही एक मात्र उपाय है। सच्चे संत महापुरुष इसी विद्या का ज्ञान देते हैं।

अशुद्ध पात्र में अमृत भी विष हो जाता है। कुत्ते की खाल के पात्र में खीर अपवित्र हो जाती है। ऐसे ही ब्रह्मविद्या भी अपात्र को देने से अनिष्ट बन जाती है। ब्रह्मविद्या तो शान्त, श्रद्धालु सेवाभावी, भक्त, तितिक्षावान, कृतज्ञ शिष्य को दी जाती है। ब्रह्मविद्या देने वाले गुरु भी श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हों, तपस्वी और संयमी हों, अत्यंत उदार हों, सच्चिदानन्द परमात्मा की अनुभूति जिनको हस्तामलकवत् हो, खुद परमात्मस्वरूप बन गये हों तो काम होता है, शिष्य का बेड़ा पार हो जाता है।

बाह्य विद्या पढ़कर पंडित बन सकते हो, ज्ञानी नहीं। उस विद्या से मस्तिष्क बड़ा हो सकता है, तार्कक बन सकते हो, हृदय में मधुरता नहीं आ सकती। उससे आजीविका कमा लो तो कमा लो, आत्मिक शांति नहीं पा सकते।

विद्या ही अर्जन करनी हो तो ऐसी करो जो बन्धनों से मुक्त करे, बन्धनों से छुटकारा दिलाय, न कि बन्धनों के पाश को मजबूत करे। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्मचर्य

यदि काम विकार उठा और हमने उसको समझकर कि 'यह ठीक नहीं है, इससे मेरे बल, बुद्धि और तेज का नाश होगा', टाला नहीं और उसकी पूर्ति करने में लम्पट हो गये तो हममें और पशुओं में अन्तर ही क्या रहा ?

रत्नों से भरी हुई सारी पृथ्वी, संसार का सारा सुवर्ण, पशु और सुन्दर स्त्रियाँ वे सब एक पुरुष को मिल जाय तो भी वे सब के सब उसके लिए पर्याप्त नहीं होंगे। अतः तृष्णा का त्याग कर देना चाहिए।

जिस व्यक्ति के जीवन में संयम नहीं है वह न तो स्वयं ठीक से उन्नति कर पाता है और न ही समाज में कोई महान कार्य कर पाता है।

साधना द्वारा जो साधक अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर, उर्ध्वरेता होकर योग-मार्ग में आगे बढ़ते हैं व कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं। ऐसा ऊर्ध्वरेता पुरुष ही परमात्मा को पा सकता है, आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।

वीर्य इस शरीर रूपी नगर का एक तरह से राजा ही है। यह वीर्य रूपी राजा यदि पुष्ट है, बलवान हो तो रोग रूपी शत्रु शरीर रूपी नगर पर कभी आक्रमण नहीं करते। जिसका वीर्य रूपी राजा निर्बल है उस शरीर रूपी नगर को रोग रूपी शत्रु आकर आक्रान्त कर देते हैं।

बिन्दुनाश (वीर्यनाश) ही मृत्यु है और बिन्दु रक्षण ही जीवन है।

जहाँ जहाँ भी आप किसी व्यक्ति के जीवन में कुछ वैशिष्टय, चेहरे पर तेज, वाणी में बल, कार्य में उत्साह पायेंगे वहाँ समझो वीर्यरक्षण का ही चमत्कार है।

वीर्य व्यय कोई क्षणिक सुख के लिए शरीर में प्रकृति की व्यवस्था नहीं है। सन्तानोत्तपत्ति के लिए इसका वास्तविक उपयोग है।

मनुष्य शरीर में भी यदि बुद्धि और विवेकपूर्वक अपने जीवन को नहीं चलाया और क्षणिक सुखों के पीछे ही हम दौड़ते रहे, तो कैसे अपने मूल लक्ष्य तक पहुँच पायेंगे ?

शादी न करना, कामभोग नहीं करना, स्त्रियों से दूर रहना इसके सीमित अर्थ में केवल वीर्यरक्षण ही ब्रह्मचर्य है। परन्तु ध्यान रहे, केवल वीर्यरक्षण मात्र साधना है, मंजिल नहीं। मनुष्य जीवन का लक्ष्य है अपने आपको जानना, आत्म-साक्षात्कार करना, जीवन्मुक्त होकर ब्रह्म में विचरण करना।

स्थूल अर्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ जो वीर्यरक्षण समझा जाता है उस अर्थ में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ व्रत है, श्रेष्ठ तप है, श्रेष्ठ साधना है और इस साधना का फल है आत्मज्ञान, आत्म-साक्षात्कार। इस फलप्राप्ति के साथ ही ब्रह्मचर्य का पूर्ण अर्थ प्रकट होता है।

बड़े खेद की बात है कि जो मनुष्य जन्म अपने और दूसरे के परम श्रेय परमात्मप्राप्ति में लगाना था उसके बजाय वह अपना अमूल्य जीवन हाड़-माँस को चाटने चींथने में बरबाद कर रहे हैं। उनकी स्थिति दयाजनक है।

शरीर चाहे स्त्री का हो चाहे पुरुष का। प्रकृति के साम्राज्य में जो जीते हैं, अपने मन के गुलाम होकर जो जीते हैं वे सब स्त्री हैं और जो प्रकृति के बन्धन से पार अपने आत्म-स्वरूप की पहचान जिन्होंने कर ली, अपने मन की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर जिन्होंने फेंक दी हैं वे पुरुष हैं। स्त्री या पुरुष शरीर एवं मान्यताएँ होती हैं, तुम तो तन-मन से पार निर्मल आत्मा हो।

आजकल जो लोग स्त्रियों के उद्धार के लिए, स्त्री जाति पर सहानूभूति या दया करने के भाव से उनको घर से खींचकर बाजार में पुरुष के समकक्ष खड़ा करने में अपना कर्त्तव्य मानते हैं वे लोग या तो अपना भाव शुद्ध होने पर भी भ्रम में ही हैं, जीवन की गहराईयों का उन्हें पता

नहीं है या तो वे जानबूझकर अपनी वासना को ही दया-सहानुभूति का चोंगा पहनाकर नारी जाति के सत्यानाश में संलग्न हैं।

जिन स्त्रियों ने घर छोड़कर स्वच्छन्द पुरुषवर्ग में विचरण किया है वे अन्य कार्यों में कितनी ही ख्याति क्यों न प्राप्त कर ले, पर यदि वे अन्तर्मुख होकर अपने शील चरित्र पर दृष्टिपात करें तो अधिकांश को अनुभव होगा कि विकार ने उनके मानस को मथ डाला है। पतन से कोई विरला ही बच गई होगी। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ज्ञानी

जिन महापुरुषों को अपने स्वरूप का यथार्थ बोध हुआ है वे किसी शास्त्र का आश्रय नहीं लेते। क्योंकि ऐसे तत्त्ववेत्ता महात्माओं के अनुभव में से ही शास्त्र बनते हैं। अनुभव सत् चित् आनन्दस्वरूप आत्मा का होता है और शास्त्र तो केवल प्रमाण स्वरूप होते हैं।

जो पुरुष कर्तृत्व छोड़ देता है ऐसे ज्ञानी महापुरुष के साथ अस्तित्व अपनी अठखेलियाँ करता है।

सच्चे फकीर मिलने दुर्लभ हैं और दृढ़ता से उनका हाथे पकड़ने वाले भी दुर्लभ हैं। जिन्होंने ऐसे फकीरों को हाथ पकड़ा है वे निहाल हो गये हैं।

लोकनिन्दा की परवाह या तो फकीर नहीं करता या कोई पागल। पागल भी लोकनिन्दा की परवाह नहीं करता लेकिन पागल और फकीर की भीतरी स्थिति में बड़ा फर्क है। पागल में मूर्खता है, वह भीतर से परेशान है। उसका मस्तिष्क ठीक से काम नहीं करता। फकीर भीतर से जगा हुआ है। उसका विवेक पूर्णतः जाग्रत है। संसार के सारे कर्त्तव्य कर्मों से वह निवृत्त हो चुका है।

जिस पुरुष ने निन्दा-स्तुति की ओर देखना ही छोड़ दिया है वह मुक्तरूप है।

जो मानव परम सत्य को उपलब्ध होता है उसके जन्म-जन्मान्तर के अनन्त संस्कार उस अनन्त परमात्मा में डूब जाते हैं। ऐसे पुरुष की दृष्टि एक ही तत्त्व की ओर लगी रहती है इसीलिए वे एक जैसे ही दिखते है। जब देखो तब प्रसन्न। हर हाल में मस्त.....।

पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
जो फुक्र में पूरे हैं वह हर हाल में खुश हैं।।
गर माल दिया यार ने तो माल में खुश हैं।
बेजर जो किया तो उसी अहवाल में खुश हैं।।

ज्ञानी कुछ भी करे तो भी उनके कर्म उनका बन्धन नहीं बनते और अज्ञानी कुछ भी न करे, चुप बैठा रहे तो भी वह कर्मबन्धन से परे नहीं रहेगा, क्योंकि वह राग-द्वेष, मेरा तेरा, शुभ-अशुभ से परे नहीं हुआ है। वह गुणातीत नहीं हुआ है।

जिसे कोई अहंता-ममता न रही, राग-द्वेष न रहा, जो अन्तर्मुख होकर, ध्यान की टोर्च लगाकर समझ गया कि यह सारा संसार मेरे ही ख्यालों का पसारा है, मुझसे कुछ अन्य है ही नहीं, वह पूर्ण निर्भय हो जाता है। वह सुख-दुःख से, हर्ष-शोक से, जन्म-मृत्यु से परे हो जाता है।

समग्र संसार का सार शरीर है, शरीर का सार इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों का सार प्राण है, प्राण का सार मन है, मन का सार बुद्धि है, बुद्धि का सार अहं है, अहं का सार चिदावलि है और चिदावलि का सार चैतन्य आत्मा है। ज्ञानी महापुरुष इस आत्मा में प्रतिष्ठित होते हैं।

पामर लोग ईश्वर के मार्ग पर भय से आते हैं, ताड़ना से आते हैं, प्रलोभन से आते हैं। जिज्ञासु लोग विवेक से आते हैं। ज्ञानी आने-जाने से परे होते हैं।

ज्ञानी महापुरुषों के लिए मानापमान का कोई मूल्य नहीं है। न तो वे मान चाहते हैं और न अपमान से डरते हैं। तथापि वे सहज ही स्वयं मानरहित रहकर दूसरों को सम्मान देते हैं।

ब्रह्मवेत्ता संत-पुरुष जागतिक हिताहित से सर्वथा परे होने पर भी वे सहज स्वभाव से परहित में ही लगे रहते हैं। उनसे किसी का अहित वैसे ही नहीं होता, जैसे अमृत से कोई मरता नहीं। उनसे सबका हित वैसे ही होता है जैसे सूर्य से सबको प्रकाश तथा गरमी मिलती है।

साधारण व्यक्ति जगत को सच्चा मानकर, सुख में सुखी एवं दुःखी हो जाता है। ज्ञानी भी बाहर से तो सुखी-दुःखी दिखेंगे लेकिन अंदर से आकाश की नाईं निर्लेप, शान्तात्मा होते हैं।
अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मयोग

(वेदान्तनिष्ठ अनुभवनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की आप्तवाणी.... जिज्ञासु मुमुक्षु साधकों के लिए आध्यात्मिक टॉनिक..... नित्य निरन्तर सेवन करने से साधक के चिन्मयवपु को परिपुष्ट करके अन्तरतम को आलोकित करने वाली दिव्य ज्योति.....)

निर्भयता, जीवन्मुक्ति, साम्राज्य, स्वराज्य सिवाय उस पुरुष के, जो अपने आप को संशयरहित होकर पूर्णब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, जानता है और किसी को कभी भी नहीं नसीब होते। जो सर्वत्र अपने ही स्वरूप को देखता है वह क्यों हिलेगा ? उसका दिल एक आत्मदेव बिना कुछ और देखता ही नहीं। चाहे तारे टूट पड़ें, समुद्र जल उठे, हिमालय उड़ता फिरे, सूर्य मारे ठंड के बर्फ को गोला बन जाय – आत्मदर्शी ज्ञानवान को इससे क्या हैरानी हो सकेगी ? उसकी आज्ञा के बाहर कुछ भी नहीं हो सकता।

जो यहाँ नानात्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है। ओ प्यारे ! मेरे अपने आप ! द्वेषातुर मूर्ख ! जितना औरों को चने चबवाना चाहता है उतना अपने आप को ब्रह्मध्यान

की खांड खीर खिला। वैरी का वैरीपन एकदम उड़ न जाय तो बात नहीं। जो तुम्हारे अन्दर है वही सब के अन्दर है।

किसी ने कहाः 'लोग तुम्हें यह कहते हैं, वह कहते हैं।' ओ भोले महेश ! तू इन बातों से अपने हृदय में व्यंग मत पड़ने दे। तू एक न मान। ब्रह्म बिना दृश्य कभी हुआ ही नहीं। चित्त में त्याग और ब्रह्मानन्द को भर कर देख ! सब बलायें आँख खोलते खोलते सात समुद्रों पार न बह जायें तो मुझको समुद्र में डुबो देना।

सर्वात्म दृष्टि हो जाय तो रोग, दुःख और मौत पास नहीं फटक सकते।

प्रतीयमान वैरी, विरोधी, निन्दक लोगों को क्षमा करते हम इतनी देर भी न लगायें जितना श्री गंगा जी तिनकों को बहा ले जाने में लगाती है या आलोक की किरणें अन्धकार को हटाने में लगाती हैं।

अहाहाहा....! अच्छे-बुरे पुरुषों में से जब हमारी जीवदृष्टि उठ जाय और उनको ब्रह्मरूपी समुद्र की लहरें जान लें तो राग-द्वेष की अग्नि बुझ जायगी।

जब मनुष्य और पदार्थ सचमुच अपना ही रूप जाने गये तो यह धड़का कैसे हो कि अमुक पुरुष न जाने मुझे क्या कहता होगा ?

शरीर आदि की पीड़ा, सम्बन्ध, लोगों की ईर्ष्या, द्वेष, सेवा, सम्मान से मुझे क्या ? कोई बुरा कहे, कोई भला कहे, मैं एक नहीं मानूँगा, मुझ में कोई पीड़ा नहीं, कोई शोक नहीं, ईर्ष्या नहीं, रोग नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं।

भयंकर भावी की भनक पाकर बगुले की तरह गर्दन उठाकर घबड़ाकर 'कें... कें....' क्यों करने लगा ? आनन्द से बैठ मेरे यार ! वहाँ कोई और नहीं है। तेरा ही परम पिता बल्कि आत्मदेव है।

छोड़ दो शरीर की चिन्ता को। मत रखो किसी की आस। परे फैंको कामना-वासना को। एक आत्मदृष्टि को दृढ़ रखो। तुम्हारी खातिर सब के सब देवता लोहे के चने भी चबा लेंगे।

जब देखो कि चिन्ता, क्रोध, काम घेरने लगे हैं तो चुपके से उठकर जल के पास चले जाओ। आचमन करो, हाथ-मुँह धोओ या स्नान ही कर लो। अवश्य शान्ति आ जायेगी। हरिध्यान रूपी क्षीरसागर में डुबकी लगाओ। क्रोध के धुएँ और भाप को ज्ञान रूपी अग्नि में बदल दो।

हे प्रभो ! अब तो मुझ से दो दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने, पीने, कपड़े-कुटिया का भी ख्याल रखूँ और दुलारे का भी मुख देखूँ ! चूल्हे में पड़े खाना-पहनना, जीना-मरना। क्या इनसे मेरा निर्वाह होता है ?

मैं तो इन बुद्धियों का प्रेरक आत्मदेव हूँ, मैं तो वही हूँ जिसका तेज-सूर्य-चन्द्रमा में चमक रहा है।

जब सर्व देश आत्मा में पाने लगे तो परोक्ष क्या रहा और स्थान सम्बन्धी चिन्ता क्यों कर उठे ? जब सर्व काल में अपने को देखा तो कल परसों आदि की फिकर कहाँ रही ?

हम सब में एक ही आत्मा व्यापक है, हम एक ही समुद्र की तरंगे हैं।

शरीर तो मैं नहीं हूँ। मैं वह हूँ जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सकते।

जिसको इस बात का विश्वास है कि मेरे भीतर आत्मा विद्यमान है तो फिर वह कौन सी ग्रन्थि है जो खुल नहीं सकती ? फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो मेरे विरूद्ध हो सके। जब मैं ही मैं हूँ तो मैं सबका स्वामी हूँ और जो चाहूँ सो कर सकता हूँ।

अगर कोई बीमारी हो जायगी तो केवल विचारशक्ति से उसको भगा देंगे। यह शक्ति यकीन है, यही विश्वास है।

श्रेय या फर्ज तो कहते हैं – दे दो त्याग, लेकिन प्रेय या गर्ज तरगीन देती हैः ले लो, यह हमारा हक है, अधिकार है। दुनियाँ में अपने अधिकार पर जोर देना सुगम है किन्तु अपने फर्ज को पूरा करने पर जोर देते चले जायें तो हमारे अधिकार हमारे पास स्वयं आयेंगे।

अगर सब कुछ कहीं बाहर ही के प्रारब्ध से होता तो शास्त्र विधि-निषेध के वाक्यों को जगह नहीं देते।

चर्मचक्षु से दृश्यमान जगत को भूलकर ब्रह्म में मग्न होना यही उपासना है।

समदृष्टि तब होगी जब लोगों में भलाई-बुराई की भावना उठ जायगी। समदृष्टि होने से सम-धी और समाधि होगी।

जब तुम दिल के मक्कर छोड़कर सीधे हो जाओ तो तुम्हारे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल उसी दम सीधे हो जायेंगे।

जब लोग चर्म की तरह आकाश को लपेट सकेंगे तब आत्मदेव को जाने बिना दुःख का अन्त हो सकेगा।

जो यह देखता है कि 'यह सब कुछ आत्मा है' वह न मृत्यु को देखता है न रोग को और न दुःख ही को। ऐसा दिखने वाला सब वस्तुओं को देखता है और सब प्रकार से सब वस्तुओं को प्राप्त होता है।

मनुष्यों द्वारा की हुई निन्दा प्रशंसा में विश्वास मत करो। ये सब चीजें गुमराह करती हैं और धोखा देती हैं।

भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के, अपने मान के, अपनी जान के ध्यान आ जाते हैं। मूर्ख को इतनी समझ नही कि ये चीजें चिन्तन के योग्य नहीं हैं। चिन्तन योग्य तो एक प्रभु हैं।

ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है जो आत्मा से इतर ब्राह्मणत्व को जानता है। क्षत्रियत्व उसको परे हटा देता है जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को जानता है। लोक उसे परे हटा देते हैं जो आत्मा से इतर लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं जो आत्मा से अन्यत्र वेदों को जानता है।

प्रत्येक वस्तु उसे परे हटा देती है जो प्रत्येक वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। प्राणी उसे परे हटा देते हैं अर्थात् दुत्कार देते हैं जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र जानता है।

यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये प्राणी, ये सब वही हैं जो कि यह आत्मा है।

भाई ! समाधि और मन की एकाग्रता तो तब होगी जब तुम्हारी तरफ से माल, धन, बंगले, मकान पर मानों हल फिर जाय ! स्त्री, पुत्र, वैरी, मित्र पर सुहागा चल जाय, सब साफ हो जाय, राम ही राम का तूफान आ जाय, कोठे दालान सब बहा ले जाय।

जो भी शिव की उपासना करते हैं वे धनवान हो जाते हैं और लक्ष्मीपति विष्णु के उपासक निर्धन रह जाते हैं। अभिप्राय यह है कि जिन लोगों के हृदय में शिवरूपी त्याग वैराग्य बसा है, उनके पास ऐश्वर्य, धन, सौभाग्य स्वयं आते हैं और जिन लोगों के अन्तःकरण लक्ष्मी, धन, दौलत में मोहित हैं वे दारिद्रय के पात्र रहते हैं।

मैं सब कुछ कर सकता हूँ, ऐसा उच्च विचार, निरन्तर उद्योग और धैर्य रखना चाहिए।

आँखों वाला केवल वही है, जिसकी दृष्टि बाह्य जगत को चीर कर पदार्थों की स्थिरता पर न जम कर और लोगों की धमकी या प्रशंसा को काटकर एक तत्त्व पर जमी रहती है।

ऐ दिल ! तू अपना परदा आप है। बीच से उठ जा। धीर पुरुष इस संसार से मुँह मोड़कर अमृत को पाते हैं।

परिस्थितियों के कुहरे और बादल को अपने ऊपर क्यों छाने देते हो ? क्या तुम सूर्यों के सूर्य नहीं हो ? क्या तुम इस ब्रह्मांड के स्वामी नहीं हो ?

मुझमें यह भावना भरी हुई थी कि न मैं शरीर हूँ, न मन हूँ। मैं तो साक्षात ब्रह्म हूँ। कोई आग मुझे जला नहीं सकती, कोई अस्त्र मुझे मार नहीं सकता। सर्वशक्तिमान परमात्मा मैं ही हूँ, अनन्त ब्रह्म मैं ही हूँ।

बाहर की चीजों में विश्वास करोगे तो तुम असफल रहोगे। यही नियम है।

जब हम दूसरों पर निर्भर रहते हैं, दूसरों के भरोसे रहते हैं तो हम अपनी आत्मिक शक्ति खो देते हैं। जब हम अपनी आत्मा में विश्वास करते हैं और आत्मा के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज में विश्वास नहीं करते तब सम्पदायें हमारे पास आती हैं।

अपने आपको ब्रह्म समझो और तुम ब्रह्म हो। अपने आपको मुक्त समझो और तुम उसी क्षण मुक्त हो।

निश्चय समझो कि यदि तुम अपने ऊपर भरोसा रख सकते हो तो कहीं भी सफलता पाओगे, तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

सब कान मेरे कान, सब नेत्र मेरे नेत्र, सब हाथ मेरे हाथ, सब मन मेरे मन। मैंने मौत निगल ली, सब भेद मैं पी गया। कैसा तरो ताजा, अच्छा और बलवान मैं हो गया।

जब हम जान लेते हैं कि आत्मा केवल एक ही तब विभिन्न नामों से जितनी शक्लें-सूरतें दिखाई देती हैं वे सब हमारी वही वास्तविक आत्मा है। अन्यथा शीशमहल के कुत्ते के समान दशा होती है। हमें हमेशा डर लगा रहता है कि यह हमको धोखा देगा, वह हानि पहुँचायेगा।

आँखें बन्द कर लो, दुनियाँ का पाँचवाँ भाग समाप्त। कान बन्द कर लो, पाँचवाँ हिस्सा और गायब। नाक बन्द करो, पाँचवाँ हिस्सा और गुप्त। अपनी किसी इन्द्रिय से काम न लो तो कहीं कोई दुनियाँ नहीं रह जायगी।

अपने आपको परिस्थिति का गुलाम मत समझो। तुम अपने भाग्य के विधाता हो। चाहे तुम जिस दशा में हो, वातावरण कुछ भी हो, देह चाहे कारागार में डाल दी जाय अथवा तेज धारा में बहा दी जाय या किसी के पैरों तले कुचली जाय, याद रखोः **मैं ईश्वर हूँ, सारी अवस्थाओं का स्वामी हूँ। मैं देह नहीं मैं भाग्यविधाता हूँ।**

दुनियाँ मेरा शरीर है सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है। जो ऐसा कह सकता है वही आवागमन के बन्धन से मुक्त है। वह तो अनन्त है। कहाँ जायेगा और कहाँ से आयेगा ? सारा विश्वब्रह्मांड उसमें हैं।

वेदान्त रसायनविद्या है के समान प्रयोगत्मक विज्ञान है।

वेदान्त निराशावाद नहीं है। वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

किसी भी प्रसंग को मन में लाकर हर्ष, शोक के वशीभूत मत हो जाना। मैं अजर हूँ, अमर हूँ। मेरा जन्म नहीं, मेरी मृत्यु नहीं। मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ। यही भावना दृढ़ रीति से हृदय में धारण करके जीवन व्यतीत करना, इसी भाव की निरन्तर सेवा करना और उसी में तल्लीन रहना।

मुक्ति अथवा आत्मज्ञान यह तेरे ही हाथ में है। यह बात तुझसे विश्वासपूर्वक कहता हूँ।

अमुक क्या कहता है क्या नहीं, इस पर यदि ध्यान दिया करें तो कुछ काम नहीं कर सकते।

चाहे हजारों रूपों में चकित करे, तथापि ऐ मेरे प्यारे ! मैं तुझे अच्छी तरह पहचानता हूँ। तू अपने चेहरे को चाहे जादू से छिपाये पर मुझसे छिप नहीं सकता।

बाहरी बातों के बारे में सोचकर अपनी मानसिक शांति भंग न करो।

जब हम सर्वात्मना तत्पर होंगे तब तो अपने व्यापक रूप के दर्शन में सफल न होने का कोई कारण ही नहीं रह जायेगा।

अपनी वास्तविकता को समझ लेने वाला पुरुष आनन्द के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। किसी भी बात और किसी भी घटना से वह नहीं डरता। यह जान लेने वाला पुरुष पाप पुण्यों को छोड़कर सदा आत्मा को याद करने लगता है और किये हुए कर्म को भी आत्मरूप ही जान लेता है।

विवेकी पुरुष इस प्रतीयमान जगत को मिथ्या मान लेता है। उसके बाद फिर जब उसे यह जगत भासता है तब वह उसे इन्द्रियोपाधिक भ्रम समझकर टालता रहता है। वह जान लेता है कि जब तक ये इन्द्रियाँ बनी हैं तब तक ऐसी प्रतीति होती ही रहेगी। वह फिर इसको सत्य मानकर कोई भी व्यवहार नहीं करता।

जगत में जो अलग-अलग नाम रूप है वे निस्तत्त्व है, क्योंकि इनके जन्म और नाश बराबर होते हैं। ज्यों ही कोई अधिकारी इस सर्वत्र परिपूर्ण सच्चिदानन्द को बुद्धियोग से देख लेगा (चाम की आँखों से नहीं), तब धीरे धीरे इन नाम-रूपों की अवहेलना बढ़ने लगेगी और नाम रूप छूटने लगेंगे।

ब्रह्म में ये नामरूप ऐसे हैं जैसे कपड़े पर कोई चित्र बना दिया गया है। जब कोई उन नामरूपों की उपेक्षा कर सके तभी उसे सच्चिदानन्द रूप ब्रह्मत्व के दर्शन होंगे।

जगत में दिखने वाले नाम रूपों का परित्याग कर देने पर सच्चिदानंद में ही ज्ञानी की ममता हो जाती है। इसीलिए विवेकी लोग हजारों प्रकार से दिख पड़ने वाले नाम रूपों की उपेक्षा करते रहते हैं।

लौकिक पदार्थ भले ही भासा करें। उनके सत्य होने का वृथा विचार सर्वथा छोड़ दो। जब लौकिक पदार्थों की उपेक्षा कर दी जायगी तब ब्रह्मचिन्तन का काँटा जाता रहेगा। फिर तो बुद्धि ब्रह्मचिन्तन में ही जुट जायगी।

वस्तुतः आत्मा में सुख-दुःखादि तीनों काल में भी नहीं है।

जब सारा जगत रज्जु में सर्प की तरह कल्पित है और मिथ्या है तब पुरुष को बंधन और मोक्ष कैसे हो सकता है ?

जब सारा विश्व अन्दर है तब बाहर देखने-सुनने की जगह कहाँ है ? अतः बाहर देखना सुनना निरर्थक है।

लोगों के अच्छे बुरे आचरणों और संवादों को अपने चित्त से नितान्त धो डालना चाहिए। इसी प्रकार अच्छे बुरे लोग जो भी मिलें उनकी हमें पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिए और अपनी आध्यात्मिक दशा की उन्नति करनी चाहिए।

किसी वस्तु को ईश्वर से बढ़कर मत समझो। ईश्वर के बराबर किसी का भी मूल्य मत समझो।

निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख सब के सब एक सम्मान घातक है।

यदि हम देहाभिमान को दूर करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर के भीतर से कार्य करने दें तो बुद्ध भगवान, हजरत या ईसा हो जाना उतना सरल है जितना कि निर्धन पोल।

दुनियाँ नहीं है, संसार नहीं है और सांसारिक जीवों की बातें कुछ नहीं है। ईश्वर ही एक मात्र सत्य है।

संसार में कोई पदार्थ नहीं जो मुझे बाँध सके। प्रत्येक वस्तु वास्तव में मुझसे ही उत्पन्न होती है।

अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ। चाहे आप उच्च पद पर हों या नीचे पद पर, इसकी तनिक भी परवाह मत करो। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करो। चाहे कोई हो, उसकी ओर निःशंक दृष्टि से देखो, हटो मत।

अनुभवी पुरुष के सामने कैसा ही व्यक्ति आ जाय, वह उस व्यक्ति के तुच्छ अहंकार या बाह्य शरीर को नहीं देखेगा। वह केवल ईश्वरत्व देखेगा।

चाहे करोड़ों सूर्यों का प्रलय हो जाय, अगणित चन्द्रमा भले ही गल कर नष्ट हो जाएँ, पर ज्ञानी पुरुष मेरू की तरह अटल और अचल रहते हैं।

यदि आप भौतिक रूप को हृदय में स्थान दोगे, यदि आप उसमें आसक्त हो जाओगे, उसे बेहद प्यार करने लगोगे तो आप देखोगे कि अवश्यमेव कुछ अघट घटना घट जायगी और उस वस्तु को हर लेगी या उसमें परिवर्तन कर देगी।

भौतिक पदार्थों में आसक्ति रखना एवं क्षणिक भौतिक पदार्थों को, विषयों को सत्य समझना ही दुःख, दर्द और चिन्ता को लाना है। इसलिए बाहरी नाम और रूप पर अपना समय और शक्ति नष्ट नहीं करना चाहिए।

चाहे यह शरीर शूली पर चढ़ाया जाय या कैद में रखा जाय, चाहे महासागर की विशाल तरंगे इस निगल जायें या अग्नि इसे झुलसा दे अथवा और कुछ बाधा भले ही आ पड़े, पर मेरा दृढ़ निश्चय भंग नहीं हो सकता।

सारे स्थूल शरीर कठ-पुतलियों के तुल्य हैं। आमतौर से लोग उन्हीं स्थूल शरीरों को वास्तविक रूप से करने वाला स्वतन्त्र कर्त्ता मानते हैं। यह भूल है।

जब अपने व्यक्तित्व के विषय में सोचना नितान्त त्याग दिया जाय तो इसके समान कोई सुख नहीं, इसके समान कोई अवस्था नहीं।

आप कोई भी काम करो पर यह मत भूलो कि आपका सच्चा स्वरूप परमेश्वर है।

ॐ का मतलब है 'मैं वही हूँ'। ऐसी दृढ़ भावना से चित्त उस तत्त्व में निमग्न हो जाता है। अनन्त देश, अनन्त काल, अनन्त वस्तु, अनन्त शक्ति, अनन्त तेज, अनन्त बल मैं हूँ।

इस दुनियाँ में जो आदमी किसी व्यक्ति या दुन्यावी चीजों में अपना दिल लगायेगा उसे तकलीफ उठानी पड़ेगी। या तो यह प्रियजन अथवा प्रिय पदार्थ उससे छीन लिये जायेंगे या उनमें से एक मर जायगा या उनमें कलह हो जायेगा।

जो आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं उनका कृपापूर्ण और प्रेममय चिन्तन करो। वे तुम्हारे अपने स्वरूप हैं।

किसी व्यक्तित्व और दलबंदी से व्याकुल और क्षुभित न होकर जो महावाक्य (अहं ब्रह्मास्मि) पर निरन्तर मनन द्वारा एकाग्रता और समाधि होती है वह स्वतः ही शक्ति, स्वतन्त्रता और प्रेम में परिणत हो जाती है।

हे डगमगाते, चंचल, संशयात्मक चित्त ! उत्साहशून्य धर्मपरायणता को अब छोड़ो। सब प्रकार का सन्देह और अगर मगर निकाल डालो। सब मत मतांतर तुम्हारी ही सृष्टि है। सूर्य चाहे पारे की थाली सिद्ध हो जाय, पृथ्वी उदराकार या खोखला मण्डल भले ही प्रमाणित हो जाय, वेद सम्भव है पौरूषेय ठहराय जा सकें, किन्तु तुम ईश्वर के सिवाय और कुछ नही हो सकते।.....और कुछ नहीं हो सकते।

हे मूढ और अदूरदर्शी जीव ! इस आदर्शरूप विधान की अपेक्षा बाह्य रूपों (व्यक्तियों) को क्यों अधिक प्यार करता है ? इसलिए कि अज्ञान के कारण ये व्यक्ति और बाह्य रूप निरन्तर एकरस रहने वाले सत्य पदार्थ दिखाई देते हैं और दैवी विधान एक अस्पर्श्य क्षणिक मेघ सदृश भान होता है। केवल शिव ही सत्य है और अन्य सब व्यक्ति एवं प्रीति के पदार्थ क्षणिक आभासरूप, छाया मात्र, मिथ्या प्रेत रूप हैं।

लोग इस शरीर को स्वार्थी, सर्वगुणसम्पन्न, मदोन्मत्त अथवा अन्य जो चाहे कहें, अपमानित, पददलित और मृतक जैसा कह दें। मुझ सर्वात्मा को इससे क्या ?

यदि हम लोग बाहर से प्राप्त हुई निन्दा-स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जाएँ, यदि सत्य के उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगाएँ तो ईश्वर के ईश्वर हम हो सकते हैं।

संसार में केवल एक ही रोग है और एक ही दवा है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' – इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सारी व्याधियों की जड़ है जो कभी एक दुःख का रूप धारण करती है और कभी दूसरे का। इसकी औषधि है अपने वास्तविक ईश्वरत्व को प्राप्त करना।

सारी चिन्ताएँ, सारे दुःख दर्द आपके भीतर ही रहते हैं, कभी बाहर नहीं होते।

सारी शंकाएँ अज्ञानजन्य हैं। एक पल में उड़ सकती हैं।

जब तक आप अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करने पर न तुलोगे तब तक तीन सौ तैंतीस कोटि कृष्ण क्यों न अवतार लें, पर कुछ भी लाभ न होगा।

जब शरीर अथवा बाह्य मायाविक रूप इतना प्रधान हो जाता है कि भीतर का ईश्वर विस्मृत हो जाता है, तब आपकी अधोगति होती है। इसे दूर करो। तब आप देखेंगे कि सारी शक्तियाँ, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ आपकी सेवा कर रही हैं। इसका निदिध्यासन करो, फिर सूर्य, चन्द्र और सारे तारे आपका हुक्म बजायेंगे।

किसी व्यक्ति को परमात्मा से भिन्न किसी अन्य भाव से देखने की कभी कोई सम्भावना मुझे नहीं रही।

इस संसार की सभी चीजें ईश्वर का चिन्ह मात्र है। पुरुष और स्त्री इन्हीं चित्रों के शिकार होते हैं। वे बुतपरस्ती का शिकार बनते हैं और मूर्तियों के गुलाम हो जाते हैं।

शरीर, भीतरी परमेश्वर का चित्र, प्रतिमूर्ति या पोशाक है। पोशाक को अथवा इसके पहनने वाले व्यक्ति को, भीतरी असलियत से अधिक प्यार मत कर।

जिस क्षण तुम इन सांसारिक पदार्थों में सुख ढूँढना छोड़ दोगे और स्वाधीन हो जाओगे, अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करोगे उसी क्षण तुम्हें ईश्वर के पास जाना नहीं पड़ेगा। ईश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेगा। यही दैवी विधान है।

यदि क्रोधी तुम्हें शाप दे और तुम कुछ न बोलो तो उसका शाप आशीर्वाद के रूप में बदल जायगा।

जो भी कुछ है सब आत्मा ही है। आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है तो तुम आत्मा ही हो। ऐसा निश्चय करो।

जबकि सब कुछ मैं ही हूँ तो दुःख और सुख अथवा बन्ध और मोक्ष आदि मुझसे पृथक कोई ऐसी वस्तु नहीं रहती कि जो मुझे बाधा दे।

सब प्राणियों का चेतनरूप ब्रह्म मैं ही हूँ।

जब हम ईश्वर के प्रतिकूल हो जाते है तब हमें कोई मार्ग नहीं दिखता और हमें घोर दुःख उठाना पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते है तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति, ठीक प्रवाह, आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं।

अपने आपको अड़ोस-पड़ोस के लोगों की आँखों से देखना, अपने सच्चे स्वरूप पर स्वयं ध्यान न देना बल्कि दूसरों की दृष्टि से अपना निरीक्षण करना यह जो स्वभाव है यही हमारे सारे दुःखों का कारण है। हम दूसरों की नजरों में अत्यन्त भला जँचना चाहते हैं, यही समाज का सामाजिक दोष है। .....और सभी धर्मों का प्रधान अवगुण है।

लोग क्यों दुःख सहते हैं ? वे दुःख सहते हैं निज आत्मा के अज्ञान के कारण, जिससे वह अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है और दूसरे उनको जो कुछ कहते हैं वही वे अपने को समझ लेते हैं। यह दुःख तब तक निरन्तर बना रहेगा जब तक मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर लेगा।

जब तक बाह्य रूपों में आसक्ति रखेंगे तब तक यह उत्थान पतन होता ही रहेगा।

जिसको ब्रह्म से एकता है उसकी सब इच्छाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं। उसे कभी कोई धोखा नहीं होगा, कोई पीड़ा या कष्ट न होगा।

अनन्त स्वरूप आत्मा के सिवाय कोई और वस्तु है ही नहीं जिसे आप देखें या सुनें। न कोई द्वैत है, न कोई पदार्थ है। हर एक वस्तु आपके लिए ईश्वर बन जानी चाहिए।

जिस समय जगत के सारे पदार्थ चित्र या चिन्ह मात्र बन जाते हैं, जिस समय हम पदार्थों को पदार्थ भाव से नहीं देखते बल्कि उनके पीछे उनके आधार रूप निर्विकार आत्मा क

देखते हैं, जिस समय हमारी दृष्टि इस या उस पदार्थ पर पड़ते ही उसमें हमारा हृदयनेत्र शुद्ध स्वरूप परमात्मा को देखता है तब समस्त विश्व के साथ एकता, अभेदता का अनुभव करना हमारे लिए सुगम हो जाता है। यही ईसा दशा है। इस अवस्था में कुछ काल रहने के बाद इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब हम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। इसको हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते है।

अगर तुम साधक हो तो शत्रु में शत्रुबुद्धि त्यागकर ईश्वरबुद्धि करो, ब्रह्मबुद्धि करो। शत्रु भी ब्रह्म है। प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में ईश्वरत्व का अनुभव करो।

अपने शरीर के जीने मरने की चिन्ता न करो। लोग आपके शरीर की पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं इसकी परवाह मत करो। इससे ऊपर उठो।

वेदान्त का अनुभव करने से समस्त पीड़ायें – शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक-तुरन्त रुक जाती है। और ..... वेदान्त का अनुभव करना कठिन काम नहीं है।

अपने ही भीतर परमेश्वर को प्रसन्न करने का यत्न कीजिए। जनता और बहुमत को आप किसी हालत में सन्तुष्ट नहीं कर सकेंगे।

जब आप स्वयं प्रसन्न हैं तब जनता अवश्य सन्तुष्ट होगी।

भूतकाल की मुझको चिन्ता नहीं और भविष्य की इच्छा नहीं। मैं वर्त्तमान में विषय तथा राग द्वेष से रहित होकर विचरता हूँ।

न मैं हूँ, न जगत है, न पृथ्वी है, तो शोक किसका करना ?

जब तक संसार का शब्द अर्थ हृदय में दृढ़ है तब तक शब्द अर्थ के अभाव का चिन्तन करें। जहाँ जगत भासता है वहाँ ब्रह्म की भावना करें। जब ब्रह्म की भावना करेंगे तब संसार के शब्द अर्थ से रहित हो जायेंगे और आत्मपद पावेंगे !

जैसे छोटे बालक के हृदय में जगत के शब्द अर्थ नहीं होते वैसे ही ज्ञानी के हृदय में भी शब्द अर्थ का अभाव है। ज्ञानी की चेष्टा प्रारब्ध वेग से होती रहती है।

जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के शब्द भासते हैं सो कुछ वास्तव में नहीं, पत्थर की नाईं मौन है, तैसे जाग्रत में भी जो कुछ शब्द होते हैं सो सब स्वप्न है, कुछ हुआ नहीं। केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है।

समाधि का अभ्यास करने पर आलस्य, भोगवासना, लय, तम, विक्षेप, रसास्वाद, शून्यता आदि विघ्न अवश्य आते हैं। अतः उत्साह से, तत्परता से इन विघ्नों को हटाकर अपने लक्ष्य पर पहुँच जाना चाहिए। आलस्य को आसन और प्राणायाम से, भोगवासना को वैराग्य और भोगों में दोषदर्शन से, लय को प्रणव के जाप से, तम को सत्त्वगुण से, विक्षेप को एकाग्रता से मिटाना चाहिए।

जब सब नारायण ही है तब भय किससे हो ? भय दूसरे से होता है।

मुझ चैतन्य आत्मा के भय से सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, यम, समुद्र, नदियाँ, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सब भयभीत होते हैं।

मुझमें मरना जीना दोनों नहीं है तो भय क्यों रखूँ ?

आप बिना कुछ न देखे, न सुने, क्योंकि मुझ सच्चिदानन्द स्वरूप बिना और कुछ है ही नहीं।

वेद सहित सर्व संसार को स्वप्नवत जानना है। जो इससे आगे भी कर्तव्य माने सो भ्रमी पुरुष है।

यह निश्चय करो कि जिस विचार और शब्द से भय उत्पन्न होता है यह केवल अज्ञान है। तुम्हें भय किसका ? संसार में आप ही आप तो हैं। इसी निश्चय पर पर्वत की भाँति अविचल रहो।

जब भेदवादियों के बीच में भ्रमयुक्त, रोचक, या भयानक वचन सुनकर चित्त घबड़ाने लगे तो एकदम अपने को उस अज्ञान संयुक्त चित्त का साक्षी जानकर, उन कल्पित वचनों को त्याग दो।

जब किसी प्रकार की कामना चित्त को उत्तेजित करे या सताने लगे, तब अपने पूर्ण तृप्त स्वरूप का स्मरण कर उस दीनता से दूर हो जाओ।

जब शरीर और इन्द्रियों से कर्म करने का मौका मिले तो अपने को साक्षी अवस्था में स्थित करो और किसी भी कर्म का कर्त्ता अपने को न मानो।

अगर साधारण लोगों से मिलकर कार्य करने का मौका सामने आये तो सब भेद-भाव दिल से हटाकर सहज और समता भाव से उस कार्य को पूरा करो।

अहो....! यह संपूर्ण जगत मुझमें ही तो उत्पन्न हुआ है तथा यह मुझमे ही स्थित है और मुझमें ही लीन हो जाता है। चराचर जगत मैं ही हूँ।

जगत रूपी चित्र आत्मस्वरूप चैतन्य में इस प्रकार माया से अर्पित है जैसे वस्त्र में चित्र। इससे मायोपाधिक जगत की उपेक्षा करके चैतन्य का परिशेष करो।

कल कभी आने वाला नहीं है। जीवित आज से टक्कर लेनी है। न किसी बात को कल पर छोड़ना, न इस चिन्ता में पड़ना कि कल क्या होगा। क्योंकि कल आने वाला नहीं है। और ..... जिसे कल समझा जाता है उसे भी आज बनकर ही आना पड़ेगा।

ब्रह्म में नाम रूप इस प्रकार देखो जैसे समुद्र में बुलबुले। यह प्रतीति मात्र है।

दूसरों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से कभी कुछ मत करो। व्यर्थ की खुशामदखोरी से बचकर जो अपने ईश्वरत्व में टिकते हैं वे ही वीर हैं।

वेदान्त के अनुसार दया मात्र दुर्बलता है। वेदान्त कहता है कि यदि आप सत्य का इसलिए विरोध करते हो कि सत्य से किसी का दिल टूट जायेगा तो सत्य की हत्या होने की अपेक्षा किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाना बेहतर है।

जब पाँचों भूत या उनसे बना हुआ कोई भी पदार्थ दिखे, उसके सत्य तत्त्व पर दृष्टि पड़ने लगे और उसी में जमने लगे तो यही 'द्वैतावज्ञा' है, यही अद्वैतबुद्धि' है।

शरीर का मोह छोड़कर भजन करना चाहिए। शरीर की जरा भी चिन्ता नहीं करना चाहिए। जैसा चिन्तन होता है वैसे ही पदार्थों से आदमी घिर जाता है।

मैं अपनी निन्दा सुनकर कभी दुःखी नहीं होऊँगा और स्तुति सुनकर प्रसन्न भी नहीं होऊँगा। कभी कभी प्रातःकाल ऐसा संकल्प दुहराकर दृढ़ हो जाना चाहिए। इससे समता के साम्राज्य में शीघ्र पहुँच जाओगे।

न कोई मृत्यु है, न रोग है, न शोक है। इस प्रकार के आनन्दमय जीवन पर नित्य ध्यान दो।

अपनी आत्मा को सृष्टि की आत्मा अनुभव करो।

पेट को चिकने और भारी पदार्थों से भर देने वाला तीव्रबुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और स्थूलबुद्धि हो जाता है। इसके विपरीत हलके भोजन से मस्तिष्क सदा स्वच्छ और हलका रहता है।

सब कुछ एक ही है। प्रेम को द्वैत से कुछ मतलब नहीं।

अपने आप में सब चीजों को और सब चीजों में अपने आपको देखना ही असली आँखवाला होना है।

यदि सबसे अपनी एकता का तुम अनुभव कर लो तो तुम देखोगे कि तुम्हारा मस्तिष्क अत्यन्त शक्तिशाली हो गया है।

अपने दृढ़ संकल्प की पूर्ति के लिए बार-बार असफल होकर भी पीछे न मुड़ो। अन्त में निःसन्देह तुम्हारी विजय होगी।

नीति में निपुण लोग चाहे प्रशंसा करें या निन्दा, लक्ष्मी चाहे अनुकूल हो या अपने मनमाने मार्ग पर जाय, मृत्यु चाहे आज आये या सैंकड़ों वर्षों के बाद, धैर्यवान कभी न्याय के पथ से विचलित नहीं होते।

बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी प्रिय और कल्याणकारी शब्दों को काम में लाओ।

मेरा धर्म सिखाता है कि भय ही सबसे बड़ा पाप है।

वीर और निडर होओ, मार्ग साफ होगा। साहसी बनो। किसी चीज से न डरो।

यह संसार बालकों का खेल मात्र है। उससे मैं कैसे विचलित हो सकता हूँ।

न तो दृष्टा ही सत्य है और न दृश्य। सब शब्दों का खेल मात्र है। शब्दों पर झगड़ने से क्या लाभ ? वास्तव में एक ही आत्मा है जो हम हैं। उसके सिवाय कुछ भी नहीं है।

मनुष्यादि प्राणी स्वप्न या स्मृति आदि के समय जब कि अनुकूल प्रतीत होने वाला बाह्यार्थ नहीं होता तब भी सुखी होता है अथवा प्रतिकूल व्याघ्रादि सच्चा पदार्थ नहीं होता तब भी दुःखी हुआ करता है। इसके विपरीत समाधि, सुषुप्ति तथा मूर्छा के समय इन बाह्यार्थ पदार्थों के

विद्यमान रहने पर भी सुखी या दुःखी नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि सुख-दुःख के साथ मानस पदार्थों के ही अन्वय व्यतिरेक हैं। जीव अपने मानस पदार्थों से ही सुखी या दुःखी हैं। केवल बाह्यार्थ से कोई सुखी दुःखी नहीं होता।

जब तक चित्त में इतनी दृढ़ता नहीं आ जाती कि शास्त्रविधियों का पालन छोड़ देने पर भी हृदय का यथार्थ भक्ति भाव नष्ट नहीं होता तब तक इनको मानते चलो।

यह जगत छोटे बच्चों के खिलौने के समान है। हम जब इसे समझ लेंगे तो जगत में कुछ भी क्यों न हो, वह हमें चंचल नहीं कर सकेगा। शुभ और अशुभ सभी मेरे दास हैं।

जगत को एक तस्वीर के समान देखो। जगत में मुझे कोई भी वस्तु विचलित नहीं कर सकती। यह समझकर जगत के सौन्दर्य का उपभोग करो।

अच्छा बुरा दोनों को एक दृष्टि से देखो। दोनों ही भगवान के खेल है। इसलिए अच्छा-बुरा, सुख-दुःख सभी में आनन्द का अनुभव करो।

लोग तुम्हारी बुराई करें तो तुम उन्हें आशीर्वाद दो। सोचकर देखो कि वे तुम्हारा कितना उपकार करते हैं।

शास्त्र तो सब हमारे ही भीतर हैं। धैर्यहीन व्यक्ति कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता।

हम दूसरों के कार्यों की जो निन्दा करते हैं वह वास्तव में हमारी अपनी ही निन्दा है।

तुम अपने क्षुद्र ब्रह्मांड को ठीक करो जो तुम्हारे हाथ में है। ऐसा करने पर बृहद् ब्रह्मांड भी तुम्हारे लिए आप ही आप ठीक हो जायगा।

हमारे भीतर हो नहीं है, बाहर में भी हम उसे नहीं देख सकते।

'खराब' शब्दवाच्य कुछ है, इसे स्वीकार मत करो।

इन्द्रियज्ञान सम्पूर्ण भ्रान्ति है।

मुक्तिलाभ करने के लिए तुम्हारे पास जो कुछ शक्ति है, सब लगा दो।

कोई भी कार्य करते समय ऐसा मत कहो कि यह मेरा कर्तव्य है। ऐसा कहो कि वह मेरा स्वभाव है।

शिशु संसार में कोई भी पाप नहीं देख पाता क्योंकि बाहर के पापों का परिणाम-निर्णायक कोई मापदण्ड उसके भीतर है ही नहीं। छोटे लड़कों के सामने डकैती होती है परन्तु उनका उधर ध्यान ही नहीं रहता। उन्हें वह अन्यायरूप प्रतीत ही नहीं होता।

दूसरे को पापी कहने से बढ़कर और कोई बुरा कार्य नहीं है। मनुष्य को भगवान समझकर उसके प्रति प्रेम रखने में कितना आनन्द है ! एकबार स्वयं अनुभव करके देखिये।

भूत या भविष्य में तुम्हारी अपेक्षा न कोई श्रेष्ठ ईश्वर था, न है, न होगा।

अन्य सभी चिन्ताएँ छोड़कर सर्वान्तःकरण से दिन-रात ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। सुख-दुःख, लाभ-हानि इन सब को त्यागकर दिन-रात ईश्वर की उपासना करो। एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दो।

जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का काम कर लेना पड़ेगा। उसे इस युग के भावों की अपेक्षा बहुत आगे जाना पड़ेगा।

जो लोग शरीर से दुर्बल हैं वे आत्म-साक्षात्कार के लिए अयोग्य हैं। मन पर एक बार अधिकार प्राप्त हो जाने पर देह सबल रहे या सूख जाय इससे कुछ नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि शरीर के स्वस्थ न रहने पर कोई आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता, शरीर में जरा भी त्रुटि रहने पर जीव सिद्ध नहीं बन सकता। जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो जाय तभी वह शान्ति को प्राप्त होता है।

मलाई, तेल, घी या चर्बी खाना ठीक नहीं है। पूरी से रोटी अच्छी होती है। मिठाई तो बिल्कुल ही नहीं खानी चाहिए। विशुद्ध वनस्पति पर ही अधिकतर अपना आधार रखना चाहिए।

दूसरे सब प्रयत्नों को छोड़कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि आत्मा का विकास हो सके। आत्मा के विकास के साथ बुद्धि भी प्रत्येक विषय में प्रवेश करने लगेगी। जीवमात्र पूर्ण आत्मा ही है।

अन्य साधारण जीवों के समान मैं भी कांचन और कामिनी में मुग्ध बना रहूँ तो इसमें मेरा वीरत्व ही क्या है ?

आप पर आपत्ति, दुःख और चिन्ताएँ भीतर के आत्मा का अनुभव कराने के लिए आती हैं। इनका काम आपको यही सुझाने का है कि आप हृदयस्थ सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश का अनुभव करें।

अपने आपको ब्रह्म समझो। अपने ब्रह्म होने में ज्वलन्त विश्वास रखो। तब कोई भी वस्तु और कोई भी व्यक्ति तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकता।

क्या तुम इस ब्रह्मांड के स्वामी नहीं हो ? ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिन्हें तुम हटा नहीं सकते ?

जानकर या अनजान में जो कोई रात-दिन यह सोचा करता है कि 'मैं नित्य हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, मैं मुक्तात्मा हूँ' वह समय पाकर अवश्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है।

योग में अनेक विघ्न हैं। योग साधते समय मन यदि विभूति के मार्ग में लुब्ध हो गया तो पुनः स्वरूप में पहुँचने में बड़ी देर लगती है। एक मात्र ज्ञानमार्ग है। उसमें भी विचारमार्ग तथा मतों के अनुकूल होने वाला मार्ग है। उसमें भी विचारमार्ग में चलते समय कई बार मन दुस्तर तर्कजालों में फँस जाता है, इसलिए विचार के साथ ध्यान भी रखना पड़ता है।

हृदय में सिंह के समान बल धारण करो। भय ही मृत्यु है, भय ही महा पातक है। इसलिए बिल्कुल निर्भय हो जाओ। फिर कोई भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

परमात्मा में अभिन्न भाव से स्थित पुरुष जगत की क्षणभंगुर अवस्था को अपनी प्रशांत ब्राह्मी स्थिति के अंदर हँसता हुआ देखता है। उसके लिए न कुछ पाना शेष रह जाता है न कुछ करना रह जाता है। वह सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्म-स्वरूप हो बन जाता है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

एक पारसी, एक हिन्दू, एक खिस्ती और एक मुसलमान यदि मनुष्य के दर्शन करना चाहे तो उनको कितनी देर लगेगी ? मनुष्य की खोज करने के लिए उनको कितनी दूर जाना पड़ेगा ? अरे ! वे खुद पहले मनुष्य हैं, बाद में पारसी, हिन्दू, खिस्ती या मुसलमान हैं। खुद को ही देख लें तो उनको मनुष्य के दर्शन हो जायेंगे।

उसी प्रकार जीव पहले शिव है बाद में जीव है। अपने स्वरूप को यथार्थ में जान ले, बस। आभूषण सुवर्ण को देखना चाहे तो कितनी देर लगेगी ? तरंग जल को देखना चाहे तो कितनी देर लगेगी ?

परन्तु.... यह देर हो रही है। इसी में युग बीत गये। जन्म-जन्मांतरों का भ्रमण हुआ। जीव अभी शिवत्व को उपलब्ध नहीं हुआ। अभी अपने आत्मदेव से मुलाकात नहीं हुई।

घट में सूझे नहीं लानत ऐसे जिन्द।
तुलसी ऐसे जीव को भयो मोतिया बिन्द।।

पूज्य बापू के आश्रमों में साधना शिविरों का आयोजन होता रहता है जिसमें हजारों साधक-भक्त लोग कामिल सदगुरु के सान्निध्य में चलती हुई आध्यात्मिक प्रयोगशाला में आकर, ध्यान योग एवं वेदान्त शक्तिपात साधना द्वारा अपने घट में ही छिपे हुए आत्मदेव की मुलाकात की आनंदपूर्ण यात्रा कर रहे हैं। इस कलिकाल में भी इन महापुरुष के पावन चरणों में बैठकर लोग प्राचीन भारत के ऋषियों का आध्यात्मिक प्रसाद, ऋषि प्रसाद पाकर जीवन को प्रसन्न, निर्भय और उत्साहपूर्ण बना रहे हैं, जीवन में कृतकृत्यता का अनुभव कर रहे हैं। धनभागी हैं वे लोग जो ऐसी प्रयोगशाला तक पहुँच पाते हैं। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ